योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 39 ~ अंक : 9
दिसम्बर 2006

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

अहम् सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विता।।

(गीता 10/8)

मैं (भगवान) ही सबका उत्पत्ति-स्थान हूँ और समस्त जगत् की मुझ (भगवान) से ही प्रवृत्ति होती है, यह मानकर बुद्धिमान् भावसम्पन्न पुरुष अपने (सब कर्मों द्वारा सर्वत्र सदा) मेरा ही भजन सेवन करते हैं।

रुचं नोधेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसू नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्।।

(यजुर्वेद)

जैसे परमात्मा पक्षपात न करके सभी वर्ग के प्राणियों से समान रूप से प्रीति करता है, वैसे ही हम सब मिलकर, ब्रह्मवेत्ता विद्वान, राजकीय व्यक्ति, व्यवसायी और सेवायें प्रदान करने वाले सभी नागरिक परस्पर रुचि और प्रीति पूर्ण व्यवहार करें।

तदात्वे चानुबन्धे वा यस्य स्यादशुभं फलम्।
कर्मणस्तन्न कर्तव्यमेतद् बुद्धिमतां मतम्।।

(चरक संहिता)

कार्य करते समय, तत्काल या भविष्य में, जिसका फल अशुभ अर्थात् हानिकारक हो, इसका विचार करके, ऐसे काम कदापि नहीं करना चाहिये। यह बुद्धिमानी का सिद्धान्त है।

अवशेन्द्रिय चित्तानां हस्तिस्नानमिव क्रिया।
दुर्भगाभरण प्रायो दानं भारः क्रिया बिना।।

(हितोपदेश)

जिनके वश में चित्त और इन्द्रिय नहीं है उनकी क्रिया (कर्म) हाथी के स्नान के समान व्यर्थ है। बिना आचरण किये ज्ञान बोझ के समान है जैसे कुरूप स्त्री के पास आभूषण।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र
श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 39
अंक 9

दिसम्बर
2006

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

इन्द्रदेव स्तुति

सहस्त्रं त इन्द्रोतयो न सहस्त्रमिषों
हरिवो गूर्ततमाः। सहस्त्रं रायो मादयध्यै
सहस्त्रिण उप न सन्तु वाजाः।।

भावार्थ

हे अश्व युक्त इन्द्रदेव ! आपके हजारों रक्षा साधन हमारे संरक्षण निमित्त हैं। हे इन्द्रदेव ! आप हजारों प्रकार के प्रशंसनीय अन्न, आनन्दित करने वाले धन तथा असीमित बल हमें प्रदान करें।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :	संयुक्त सम्पादक :	प्रबन्ध सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी	डॉ. विजय सिंह	समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज — 3
2. सम्पादकीय — 11
3. वैराग्य – जनक कुलश्रेष्ठ — 14
4. योग तत्त्व मीमांसा – स्वामी इन्द्रानन्द उदासी — 17
5. प्रभु प्यारे से छेड़खानी का फल – वेणवदेव मालवीय — 20
6. कर्म और भोग – इन्दू शर्मा — 23
7. सद्‌गुरु कृपा से साधना व अमरत्ता की ओर – कु. रचना शर्मा — 25
8. गुरुदीक्षा के बाद मेरे अनुभव – महावीर सिंह चौहान — 27
9. आधुनिक शिक्षा और सदाचार – अशोक दिग्विजय — 31
10. धर्म और अधर्म – स्वामी श्री सनातनदेव जी — 34
11. पीकर गुरु के ज्ञान का प्याला – राजेश कुमार सिंह — 36
12. कल्याण का मूल स्रोत – देवव्रत द्विवेदी — 37
13. गुरुदेव तेरी लीला हर मन को भायी – डॉ. कुणवीर सिंह तोमर — 39
14. विश्वास की शक्ति और स्वीकारात्मक विचार – दृष्टिकेतु पुण्डीर — 40

एक प्रति	: रु.	10.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	110.00
द्विवार्षिक	: रु.	200.00
आजीवन	: रु.	800.00

कर्म-विपाक एवं कर्म-वासना

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्रीमद्‌भगवद् गीता में आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्ण ने दो श्लोकों में कर्म-विवेचना करते हुए कर्मगति को बहुत गहन बताया है कर्म क्या है और अकर्म क्या है? इसको बड़े-बड़े विद्वान भी नहीं समझ पाते। वे अपने मुखारविन्द से इस बात को स्वयं स्वीकार करते हैं कि-

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिता:। तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽशुभात्॥

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मण:। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति:॥

अर्थात् कर्म क्या है और अकर्म क्या है, इस विषय को बड़े-बड़े विद्वान, कविगण भी नहीं समझ सके हैं। इसलिए हे अर्जुन! मैं तुम्हें कर्मों का स्वरूप समझाता हूँ। जिसको समझकर मनुष्य कर्म के बन्धन से छूट जाया करता है। तुम कर्मों को भी समझो, साथ ही विकर्मों को भी समझो और इसके साथ-साथ अकर्मों को भी समझो, क्योंकि कर्मगति बहुत ही गहन है। कर्मगति को बड़े-बड़े योगी और विद्वान भी नहीं समझ पाते।

इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने कर्मगति को बहुत ही गहन बतलाया है, जिसे हर व्यक्ति को समझ लेना सहज सम्भव नहीं होता। योगदर्शन में भगवान पातंजलि देव ने कर्म जाति को चार प्रकार से समझाया है। उन्होंने साथ ही साथ यह भी समझाया है कि यह चतुर्विध कर्म-जाति कहाँ-कहाँ लागू होती है और किस प्रकार के कर्मों को करता हुआ मनुष्य किस-किस प्रकार के कर्म विपाक का भागी हुआ करता है।

भगवान पतंजलिदेव की बतलाई हुई यह चतुर्विध कर्म-जाति जिसका नीचे उल्लेख किया जा रहा है, वही भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में कर्म, विकर्म एवं अकर्म में विभक्त है। केवल मात्र समझाने का रूपान्तर है जिससे मनुष्य शब्दात्-भेद से इसको भली प्रकार से समझ सके। यथा-

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्॥ -योगदर्शन 4-7

अर्थात् कर्म-जाति में चार प्रकार के कर्म हुआ करते हैं। पापकर्म, पुण्यकर्म, पाप और पुण्य के मिलेजुले कर्म और न पाप के न पुण्य के (केवल मात्र क्रियात्मक रूप से किये जाने वाले कर्म)। यह चतुर्विध कर्म-जाति भगवान पतंजलिदेव ने अपने योगदर्शन में बतलाई है और साथ ही यह भी बतला दिया कि इस चतुर्विध कर्म-जाति में तीन प्रकार का कर्म सांसारिक लोग किया करते हैं और केवलमात्र क्रियात्मक कर्म केवल योगी ही करते हैं। पढ़िये इस सूत्र पर भगवान व्यासदेव जी की प्रामाणिकता-

चतुष्पात् खल्वियं कर्मजाति: - कृष्णा, शुक्लाकृष्णा, शुक्ला, अशुक्लाकृष्णा चेति, तत्र दुरात्मनां शुक्ला कृष्णा बहि:- साधनसाध्या तत्र परपीडाऽनुग्रहद्वारेण कर्माशयप्रचय:, शुक्ला तप:स्वाध्यायध्यानवतां सा हि केवले मनस्यायत्तत्वादबहि: साधनाधीना न परान् पीडयित्वा भवति अशुक्लाकृष्णा सन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति, तत्राशुक्लं योगिन एव

फलसंन्यासाद् अकृष्णं चानुपादानाद् इतरेषां तु भूतानां पूर्वमेव त्रिविधमिति ।।7।।

अर्थात् यह कर्म जाति चार प्रकार की है। कृष्णा – अर्थात् पाप कर्म, शुक्लाकृष्णा–पाप और पुण्य के मिले हुए कर्म और तीसरे शुक्ला अर्थात् केवलमात्र पुण्य के कर्म और चौथे ऐसे कर्म होते हैं जो अशुक्लाकृष्णा अर्थात् न वे पाप होते हैं और न पुण्य के। यह चौथी प्रकार के कर्म केवल मात्र क्रियारूप ही हुआ करते हैं। जैसे एक व्यक्ति स्वाभाविक रूप से हाथ हिलाता है, उस हाथ के हिलाने में उसका अपना कोई लक्ष्य नहीं रहता, वह कर्म केवल हरकत मात्र का ही कर्म है। उसमें पाप कर्म केवलमात्र दुरात्माओं के ही हुआ करते हैं और इसके अतिरिक्त जो कर्म पाप और पुण्य के मिले हुए हुआ करते हैं, ऐसा कर्माशय दूसरों को दुःख देना या किसी पर अनुग्रह करना आदि और कर्मों से प्रचय किया जाया करता है। सांसारिक लोग संसार में रहते हुए अच्छे और बुरे दोनों ही प्रकार के कर्मों को करते रहते हैं। ऐसे कर्मों का परिणाम परपीड़न भी होता है एवं अनुग्रह भी। जैसे कोई यज्ञ, दानादि शुभ कर्म कर रहा है और उसके बीच में ही काम, क्रोध आदि के वश में होकर किसी को सता रहा देता है, मारता या पीटता है तो वह व्यक्ति यज्ञ, दान आदि करते हुए भी साथ–साथ परपीड़न आदि जो कर्म कर रहा है, वे भी कर्म परपीड़न आदि क्लिष्ट कर्म कहलाते हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य के चित्त में क्लिष्टाक्लिष्ट दोनों प्रकार की चित्तवृत्तियों का प्रवाह चलता रहता है। अतः ऐसा चित्त दोनों प्रकार के पाप–पुण्य प्रधान कर्माशय के प्रचय का कारण बनता है। इसके अतिरिक्त तीसरा कर्माशय केवलमात्र शुक्ला कर्मों का हुआ करता है। अर्थात् उसमें मनुष्य केवलमात्र पुण्य ही पुण्य के कर्म करता है, जिनके करने से केवल मात्र पुण्य प्रधान कर्मों के प्रचय का आधार हुआ करता है। यह शुक्लात्मक कर्म अर्थात् पुण्य प्रधान कर्म केवलमात्र तप व स्वाध्याय के द्वारा ध्यानयोग प्रधान अर्थात् नित्य नियमानुसार ध्यानाभ्यास करने वाले ध्यानियों का होता है। इसमें मानस चिंतन ही प्रधान कारण रहता है। एकान्तवास करने वाले एवं नित्य नियमानुसार ध्यानाभ्यास करने वाले साधकों के लिए परपीड़न आदि का तो प्रश्न पैदा ही नहीं होता, वे लोग तो केवल मात्र अपने मानस चिंतन द्वारा किसी दूसरे का अहित न करके अपने ही आत्म कल्याण के निमित्त ध्यानाभ्यास करते हैं। इसलिए उनका कर्माशय प्रचय केवल मात्र शुक्ल कर्मात्मक अर्थात् पुण्य प्रधान ही हुआ करता है। इसके बाद जिन लोगों के कर्मबन्धन क्षय हो जाते हैं, जो लोग कर्मबन्धन से परे होकर क्षीण क्लेश सन्यासी बन जाते हैं अर्थात् जिनको कृत–कृत्यता प्राप्त हो जाती है, वे कर्मजाल से परे होकर कर्म–विमुक्त हो जाया करते हैं। उनके लिए हमारे शास्त्र बतलाते हैं –

भिद्यते हृदय ग्रन्थि छिद्यन्ते सर्व संशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।।

अर्थात् इस योगी को परावर दृष्टि हो जाने के बाद सब संशयों का नाश हो जाता है। कर्म बन्धन क्षय हो जाते हैं एवं हृदय ग्रन्थि खुल जाया करती है। ऐसे योगी क्षीण क्लेशों वाले केवलमात्र लोकोपकार के लिए ही शरीर को धारण करने वाले चरमदेह वाले कहलाया करते हैं, अर्थात् वे लोग जन्म–मरण से परे होकर अपने ही शुद्ध स्वरूप में स्थित रहा करते हैं। उनका वह शरीर केवलमात्र पिछला शरीर हुआ करता है। उस शरीर के बाद उनको दुबारा शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनको चरम देह वाले कहा गया है। अतः सिद्धान्त की बात यह रही कि पाप के कर्म, पुण्य के कर्म और पाप और पुण्य के मिलेजुले कर्म ये तीनों जातियां संसार वालों की होती हैं और पाप–पुण्य रहित अशुक्लाऽकृष्णा कर्म केवलमात्र चरमदेह धारण करने वाले योगियों के हुआ करते हैं। इन्हीं

चार प्रकार के कर्मों से कर्माशयों का प्रचय होता रहता है। तीन प्रकार के पाप, पुण्य एवं पाप और पुण्य के मिले-जुले कर्माशयों द्वारा जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है किन्तु जो लोग क्षीण क्लेश एवं चरमदेहधारी हो जाते है उनका कर्माशय प्रचय नहीं होता। वे तो केवलमात्र जितने दिन भी इस शरीर मे रहते है, सदा क्रियात्मक कर्म ही किया करते है और कर्माशय प्रचय उन्ही का होता है, जिनमे कर्मो के अच्छे-बुरे भोग को देने वाले कर्म रहा करते है। भगवान पतंजलिदेव इस सिद्धान्त को इस प्रकार समझाते है-

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्।।8।।

अर्थात् मनुष्य का जैसा कर्म विपाक होता है उस कर्म विपाक के अनुसार ही उसके अन्दर कर्म-वासना रहा करती है। वह कर्म-वासना ही मनुष्य को जन्म देने का कारण बना करती है। एक प्रकार से कर्मफल के अन्दर उस फल के बीज रूप से वह वासना ही मन मे कायम रहती है। पढ़िये इस सूत्र पर श्री व्यासदेव जी के विचार -

तत इति त्रिविधात्कर्मणः तद्विपाकानुगुणानामेवेति यज्जातीयस्य कर्मणो यो विपाकास्तस्यानुगुणा या वासना कर्मविपाकमनुशेरते तासामेवाभिव्यक्तिः। न हि दैवं कर्म विपच्यमानं नारकतिर्यंमनुष्यवासनाभिव्यक्तिनिमित्तं संभवति किन्तु दैवानुगुणा एवास्य वासना व्यज्यन्ते। नारकतिर्यंमनुष्येषु चैवं समानश्चर्चः।।8।।

अर्थात् कर्मो मे यदि मनुष्य पाप कर्म विपाक भोग रहा है तो उस दशा मे पापकर्म विपाक के अनुसार ही वासना बनेगी, क्योंकि वासना दूसरे जन्म की यात्री बीज स्वरूपा है। यदि मनुष्य पुण्यकर्म विपाक का उपभोक्ता है तो उस पुण्य विपाक के अनुसार ही वासना बनेगी और वैसा ही मनुष्य का तदनुकूल दूसरा रूप तैयार हो जायेगा। यदि मनुष्य पाप और पुण्य मिले-जुले कर्मों का उपभोग कर रहा है तब उसकी वासना भी वैसी ही बनेगी और वह वासना तदा जातीय संस्कारो को ही पुष्ट करेगी। कहने का अभिप्राय केवलमात्र यही है कि मनुष्य जैसे-जैसे कर्म फलो का उपभोक्ता होता है वैसी-वैसी ही वासना भी उसमे पैदा होती रहती है। ऐसा नही हो सकता कि कोई मनुष्य यदि दैविक कर्म विपाक को भोग रहा है तब इस हालत मे उसके मन के अन्दर नरक एवं तिर्यक योनि की वासना पैदा हो जाये। ऐसा बिल्कुल नही हो सकता। जैसे-जैसे कर्म विपाक को मनुष्य भोगता है वैसी-वैसी वासना भी उसके मन मे पैदा होती रहती है। यदि वह दैविक कर्म-विपाक भोगता है तो दैवी वासना और यदि वह कोई कठिन क्लिष्ट घोरत्तम दुःखदायक संस्कार का उपभोग करता है तो वैसी स्थिति मे नरक तिर्यक योनि आदि की वासना ही पैदा हुआ करती है और तदनुसार वैसा ही उसका जन्म भी हो जाया करता है। मनुष्य जीवन की समाप्तिकाल मे जैसा-जैसा कर्म-विपाक भोगते हुए मनुष्य अपने शरीर को छोड़ा करता है, वैसा-वैसा ही उसका जन्म भी हुआ करता है। आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता मे इस सिद्धान्त की ही पुष्टि की है। भगवान ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा -

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः।।
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवेति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः।।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्।।

गीता 8/5.6.7

अर्थात् शरीर के अन्तकाल मे जो व्यक्ति मेरा चिन्तन करता हुआ शरीर छोड़ता है वह मुझको ही प्राप्त हो जाता है, इसमें कोई भी शंका की बात नहीं है। इसके अतिरिक्त जिन–जिन भावों का स्मरण करता हुआ मनुष्य देह त्याग करता है वह उन भावों की वैसी ही प्रेरणा पाकर वैसा ही जन्म ग्रहण कर लिया करता है। इसलिये हे अर्जुन! तू हर समय मेरा चिंतन करता हुआ युद्ध कर, ऐसा करने से मुझको ही प्राप्त हो जायेगा।

अतः यह बात सिद्ध हो गयी कि मनुष्य अपने कर्म–विपाक के अनुसार उस समय जैसी उसकी दुःख या सुख की वासना होती है वैसा ही वह जन्म ग्रहण किया करता है। यही कारण है कि हमारे सभी सन्तों ने, पुराणों ने एवं इतिहास ने भी मनुष्य जन्म की दुर्लभता बतलाई है। क्योंकि साधारणतया संसार मे जन्म लेने वाले सभी मनुष्यों का कर्म–विपाक अधिकांश रजोगुण एवं तमोगुण प्रधान ही हुआ करता है और पूरा जन्म इन्द्रिय जन्य भोगों को भोगते–भोगते मरणकाल तक मनुष्य बिल्कुल शक्ति से हीन हो जाया करता है। इसलिए मृत्युकाल मे जब कठोरतम कर्म विपाक को भोगते हुए प्राणों का घर्षण होने लगता है एवं रुक–रुक करके बड़ी कठिनता से श्वास बाहर आते है, उस समय वह दुःख इतना कष्टदायक होता है कि मनुष्य से कोई शुभचिंतन बन ही नहीं सकता। कठिन कर्म विपाक होने के कारण मृत्युकाल मे उसके मन में वासनायें दुःखमयी ही होती है, जिसका परिणाम निकलता है कि मनुष्य का वर्तमान जन्म तो समाप्त हो जाता है पर क्लिष्ट कर्म–विपाक की क्लिष्ट वासनाओं के अनुसार ही प्राणी अब तक मनुष्य जन्म में था। प्राणान्त हो जाने के बाद नरक एवं तिर्यक आदि योनि में प्रवेश कर जाया करता है। फिर उन योनियों में जैसे–जैसे दुःखों को वह प्राणी भोगता है तदनुरूप ही उसकी वासनायें बन जाती है। ये वासनायें उन्हीं नारकीय एवं तिर्यक आदि योनियो में उसको जन्म देती रहती है, क्योंकि ये सब योनियां वास्तव मे भोग–योनियाँ है। इन योनियों में प्राणी कोई शुभाशुभ कर्म तो कर ही नही सकता, प्रत्युत जैसे–जैसे कर्मविपाक का वह भोग करता है वैसी ही मृत्युकाल मे वासनायें भी बनती है और फिर इन वासनाओं के फलस्वरूप अन्यान्य योनियाँ भी मिलती चली जाया करती है। संस्कार भोग के अनुरूप प्रायः इसी प्रकार की योनियाँ मिलती रहती है। अन्तिम परिणाम यह निकलता है कि एक लम्बे भोगकाल के बाद ही किसी प्रबल पुण्य के बल से हमें पुनः मनुष्य जन्म की प्राप्ति हुआ करती है। यही कारण है कि हमारे सभी शास्त्र और धर्मपरायण विद्वानों ने मनुष्य जन्म की दुर्लभता बतलाई है। यह दूसरी बात है कि कोई मनुष्य, मनुष्य जन्म धारण करके तीव्रतम तप या स्वाध्याय करे या समाधि लगाये।

सर्व समर्थ सिद्ध महात्माओं की सेवा करे तो वह दृष्टि जन्म संवेदनीय कर्मों को तैयार कर ले। ये दृष्टि जन्म संवेदनीय कर्म बड़े ही तीव्र संवेग हुआ करते हैं जिनको अपने प्रबल प्रभाव से दूसरा उत्तमोत्तम कर्माशय का प्रचय करके मनुष्य जन्म का ही कारण बन जाया करता है। किन्तु यह दृष्टि जन्म संवेदनीय कर्माशय सभी मनुष्यों का नहीं हो पाता। साधारणतया सभी मनुष्य प्रायः प्रवृत्तिमार्ग में फँसे रहते हैं और प्रवृत्तिमार्ग के अन्दर किसी प्रकार का अध्यात्म विकास जप, तप और संयम प्रायः बन ही नहीं पाता है। सन्त, महात्मा, तपस्वी एवं सर्वसमर्थ सिद्ध लोगों की सेवा का अवसर

ही नहीं निकल पाता। अतः मनुष्य के अपने साधारण प्रारब्ध के अनुसार जैसा-जैसा कर्म-विपाक होता है, उसी का उपभोग मनुष्य कर पाता है। भगवान की त्रिगुणात्मिका माया का बन्धन इतना बुरा है कि कोई मनुष्य उसको तोड़ नहीं पाता। कोई-कोई बिरले भाग्यवान ही ऐसे होते हैं जो इन माया-बन्धनों से मुक्त होकर अपने भविष्य का उत्तम निर्माण कर लें अन्यथा **'गतानुगतिकोलोकः'** के नियमानुसार मनुष्य अपने प्रारब्ध को भोगता हुआ चलता रहता है। और यह प्रारब्ध प्रायः रजोगुण, तमोगुण प्रधान होने के कारण क्लेश और प्रवृत्ति का दाता ही रहता है, जिसके कारण भव-बन्धन से मुक्ति प्राप्त करना अत्यन्त ही दुर्लभ हो जाया करता है। केवलमात्र कोई भाग्यशाली व्यक्ति ही परमात्मा की कृपापूर्वक महापुरुषों का सत्संग लाभ प्राप्त करता है। और उसे सत्संग लाभ को प्राप्त करके अपने आप को दुष्प्रवृत्तियों से निकालकर वह शुभ प्रवृत्तियों की ओर बढ़ जाया करता है। ऐसे व्यक्ति के लिए मनुष्य जन्म की दुर्लभता नहीं रहती। प्रत्युत उन दृश्य जन्म संवेदनीय कर्मों की प्रेरणा को पाकर अपनी उत्तमोत्तम प्रगति को वह बढ़ा लिया करता है तथा मनुष्य जन्म की दुर्लभता को हटाकर सुलभता की ओर बढ़ जाया करता है। जो मनुष्य यह जीवन धारण करके अपने आप को तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान एवं महापुरुषों की सेवा करता रहता है तथा अपनी इन्द्रियों पर निग्रह करके अपने आप को ध्यानयोग परायण बना लेता है, उसका कठिन कर्म विपाक भी बहुत सूक्ष्म होकर निबट जाया करता है। योगदर्शन में भगवान पतंजलिदेव ने कर्म-जाति के चार मार्ग लिखे हैं। उनमें से कुछ इस प्रकार के कर्म होते हैं जो कर्माशय में प्रसुप्त रहा करते हैं एवं कुछ कर्म ऐसे हुआ करते हैं, जो उपभोग काल में हल्के बन जाया करते हैं। अर्थात् उनका तन्वीकरण हो जाया करता है। एवं कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो दूसरे कर्मों के तीव्रतम भुगतान में आकर विच्छिन्न हो जाया करते हैं। और कुछ कर्म इस प्रकार के होते हैं जो उदार कहलाते हैं। इन सभी कर्मों की मूल अविद्या कहलाती है। किन-किन प्रकार के कर्म विपाकों का किस-किस प्रकार भुगतान होता है और साधक अपने आप को दृश्य जन्म संवेदनीय कर्मों के द्वारा कैसे अपने आपको उन्नत कर सकता है, इसका व्याख्यान इस निम्नांकित सूत्र में हम पाठकों को समझा देना चाहते हैं। सूत्र इस प्रकार है -

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्॥4॥

अर्थात् प्रसुप्ततनु, विच्छिन्न एवं उदार संस्कारों की जननी अविद्या होती है। श्री व्यासदेव ने अपने व्यास भाष्य में किन संस्कारों का किस प्रकार से भुगतान होता है, इसको बहुत ही स्पष्टतया समझाकर लिखा है। जिससे हर साधक यह भली प्रकार से समझ सकता है कि अपने कठिन कर्म विपाक को किस प्रकार जल्दी से जल्दी निबटा करके वह उत्तम प्रारब्ध बना सकता है। पढ़िये श्री व्यासदेव जी का भाष्य -

अत्राविद्या क्षेत्रम्-प्रसवभूमिः उत्तरेषाम्-अस्मिताऽऽदीनां चतुर्विधकल्पितानां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् तत्र काप्रसुप्तिः? चेतसिशक्तिमात्र प्रतिष्ठानां बीजभावोपगमः, तस्यप्रबोध आलम्बने सम्मुखीभावः प्रसंख्यानवतो दग्धक्लेशबीजस्य सम्मुखीभूतेऽप्यालम्बने नासौ पुनरस्ति, दग्धबीजस्यकुतःप्ररोह इति। अतः क्षीणक्लेशः कुशलश्चरमदेह इत्युच्यते। तत्रैव सा दग्धबीजभावा पंचमी क्लेशावस्था नान्यत्रेति। सतां क्लेशानां तदा बीजसामर्थ्यं दग्धमिति विषयस्य सम्मुखीभावेऽपिसति न भवत्येषां प्रबोध इत्युक्ता प्रसुप्तिः दग्धबीजानामप्ररोहश्च। तनुत्वमुच्यते। प्रतिपक्षभावनोपहताः क्लेशास्तनवो भवन्ति। तथा विच्छिद्य विच्छिद्य तेन तेनात्मा

पुनः पुनः समुदाचरन्तीति विच्छिन्नाः, कथं रागकाले क्रोधस्यादर्शनात् न हि रागकाले क्रोधः समुदाचरति रागश्च क्वचिद्दृश्यमानो न विषयान्तरे नास्ति। नैकस्यां स्त्रियां चैत्रो रक्त इत्यन्यासु स्त्रीषु विरक्तः किन्तु तत्र रागो लब्धवृत्तिरन्यत्र तु भविष्यद्वृत्तिरिति। स हि तदा प्रसुप्तनुविच्छिन्नो भवति।

विषये यो लब्धवृत्तिः स उदारः। सर्व एवैते क्लेशविषयत्वप्रत्यय नातिक्रामन्ति। कस्तर्हि विच्छिन्नः प्रसुप्तस्तनुरुदारो वा क्लेश इति उच्यते सत्यमेवैतत्, किन्तु विशिष्टानामेवैतेषां विच्छिन्नादित्वं। यथैव प्रतिपक्षभावनातो निवृत्तस्तथैव स्वव्यंजकांजनेनाभिव्यक्त इति। सर्व एवामी क्लेशा अविद्याभेदाः। कस्मात् सर्वेष्वविद्यैवाभिप्लवते। यद्विद्यया वस्त्वाकार्यते तदेवानुशेरते क्लेशाः, विपर्यासप्रत्ययकाल उपलभ्यन्ते, क्षीयमाणां चाविद्यामनु क्षीयन्त इति॥4॥

अविद्या आदि पाँचों क्लेश ही संस्कार से बद्ध करके प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार रूप धारण किया करते हैं। इन चारों प्रकार के सुषुप्त, तनु, विच्छिन्न और उदार रूप संस्कारों का क्या स्वरूप है? यह यहाँ समझाया गया है। योगाचार्य श्री व्यासदेव जी महाराज ने संस्कारों की इन चारों अवस्थाओं को इस प्रकार से वर्णित किया है – प्रसुप्त संस्कार ऐसे योगी लोगों के हुआ करते हैं जो अपने योगध्यान के बल से पूर्णरूपेण स्वरूपावस्थित हो चुकते हैं एवं प्रतिक्षण अपने नित्य शाश्वत स्वरूप में लीन रहा करते हैं। उनके ये संस्कार दग्धबीज हो जाते हैं, क्योंकि वह योगी चरमदेही है, अर्थात् उसका यह शरीर पिछला शरीर है। जब तक वह अपने इस शरीर को इस लोक में रखना चाहेगा तब तक ही वृत्ति सारूप्य के कारण निमित्तमात्र संस्कारों का उपभोक्ता बना रहेगा। साधारण रूप से कहने मात्र के लिए लौकिक व्यवहार खाना, पीना, सोना, उठना–बैठना आदि कार्य करता रहेगा, उसके अन्तःकरण में जन्म जन्मान्तर के जो प्रसुप्त संस्कार पड़े हुए हैं, ऐसे योगी के प्रसंख्यान बल से दग्धबीज हो जाया करते हैं, और दग्धबीज हो जाने पर उनको पुनः उत्पत्ति नहीं हुआ करती।

ऐसा होना एक नियम की बात है, जैसे कि खेत में बोये जाने वाले बीजों को यदि हम अग्नि में भून करके उनकी जनन शक्ति को जला दें और फिर उन भुने हुए बीजों को किसी उपजाऊ जमीन में भी बो दें, तो वे पैदा नहीं हुआ करते। क्योंकि उनकी बीज शक्ति अग्नि से जल चुकी है। इसी प्रकार जो योगी परावर दर्शन के बाद क्लेशों से अभिभूत नहीं होते एवं अपने आत्मस्वरूप में प्रतिक्षण स्थित रहा करते हैं, उनके अन्तःकरण में जो संस्कार जन्म जन्मान्तरों से प्रसुप्त रूप से पड़े हुए हैं वे केवलमात्र बीज भाव से अवस्थित रहते हैं, किन्तु निर्बीज समाज में समाविस्थ रहने वाला योगी अपने प्रसंख्यान बल से ऐसे सभी प्रसुप्त संस्कारों की प्ररोहण शक्ति को जला चुका है। अतः उनकी पुनरोत्पत्ति नहीं होती। ऐसे चरमदेहधारी योगी के सामने यदि किसी प्रकार का कोई विषम जाल आ भी जाता है तो वह विषम जाल उसके मन पर कोई प्रभाव नहीं डालता, क्योंकि वह योगी अपने उन संस्कारों को प्ररोहण शक्ति रहित अर्थात् दग्धबीज बना चुका है। ऐसी स्थिति को ही प्रसुप्त रूप से वर्णन किया गया है।

इसके अतिरिक्त प्रतिपक्ष से दबाये हुए संस्कार हल्के हो जाया करते हैं। यही उन संस्कारों का तन्वीकरण कहलाता है।

श्री व्यासदेव जी ने एक उदाहरण देकर के संस्कारों के तन्वीकरण की बात भी समझायी है,

उसको इस प्रकार से समझ लेना चाहिये। जैसे किसी व्यक्ति के मन में किसी के प्रति राग बनता है तो वह व्यक्ति उस रागकाल में उस दूसरे व्यक्ति को अपने प्यार का ही प्रदर्शन करता है। रागकाल में उसके प्रति क्रोध नहीं आता, यद्यपि क्रोध भी क्लेशान्तर्गत एक वृत्ति है। किन्तु रागकाल में रागलब्ध–वृत्ति उभरती है और क्रोध विच्छिन्न या तनुत्व को प्राप्त हुआ करता है। इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि राग करने वाले व्यक्ति के मन के अन्दर क्रोध निर्बीज हो गया है। ऐसी बात नहीं। रागकाल में क्रोध का निर्बीजत्व तो नहीं है, किन्तु उस समय राग करने वाले व्यक्ति के मन में क्रोध भी हल्केपन से बीज रूप से रहा तो करता है, किन्तु उस समय रागलब्ध व्यक्ति उदार है और क्रोध बीज रूप से मन में स्थित तो है, किन्तु उस समय राग की प्रधानता के कारण राग उदार क्लेश है, अर्थात् लब्धवृत्ति है एवं क्रोधादि अन्य संस्कार या तो विच्छिन्न हो जाते है या उनका तन्वीकरण हो करके बहुत ही हल्केपन के साथ बीज रूप से विद्यमान रहा करते है।

यहाँ पर श्री व्यासदेव जी महाराज ने चैत्र नामक किसी व्यक्ति को उदाहरण में रखकर के इस सिद्धान्त का स्पष्टीकरण किया है। चैत्र नामक कोई व्यक्ति किसी स्त्री में अनुराग करता है तो इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि उसके अन्दर उस समय क्रोध समाप्त हो चुका है। खत्म तो नहीं हुआ किन्तु जिसके प्रति राग किया जा रहा है उसके प्रति रागलब्ध–वृत्ति उदार रूप से विद्यमान है और क्रोधादिक अन्य वृत्तियां उस समय विच्छिन्नता या तनुत्व के रूप को धारण कर चुकी है, यह राग भी उस समय उस एक व्यक्ति में लब्धवृत्ति एवं उदार है, किन्तु कालान्तर में अर्थात् भविष्यत् वृत्ति में यहाँ यह तनुत्व को प्राप्त हो जाये और किसी और दूसरे व्यक्ति में लब्धवृत्ति होकर उदारता को प्राप्त हो जाये या इधर से बिल्कुल ही विच्छिन्नता को प्राप्त हो जाये। इस प्रकार जो योगी ध्यानप्रवाह वाले बन जाया करते है वे अपने संस्कारों का भुगतान बहुत ही सूक्ष्मता के साथ कर लिया करते है।

जो लोग चरमदेही हो जाते है वे तो अपने संस्कारों का दग्धबीज कर ही डालते है, किन्तु इसके अतिरिक्त जो ध्यानयोगी है और उनकी ध्यानयोग की वृत्ति अन्तर्जगत में रहा करती है अर्थात् बाहरी दुनियाँ को न देखकर प्रति क्षण अन्तर्जगत में लीन रहा करते है, अर्थात् जो सम्प्रज्ञात समाधि में प्रख्या प्रवृत्ति स्थितिशील पंच–महाभूतात्मक एवं पंच–ज्ञानेन्द्रियात्मक दृश्य को अन्तर्दृष्टि द्वारा अपवर्गार्थ देखते है, ऐसे योगी उस समाधिकाल में आने वाले उस प्रबल संस्कार को भी सूक्ष्म में भोग कराके ही समाप्त कर दिया करते है।

मेरे परम गुरुदेव आनन्दकन्द योगयोगेश्वर श्री रामलाल जी के चरित्रों में कितनी ही ऐसी घटनायें वर्णित है, जिनमें बहुत ही अवश्यभावी संस्कार जो शरीर में भोगरूप से आने वाले थे, वे सभी संस्कार साधकों के समाविष्ट होने के कारण बिल्कुल ही सूक्ष्म रूप से निबट गये। उदाहरण के लिए – एक योगाभ्यासी साधक की आपबीती घटना सूक्ष्मरूप में केवलमात्र सिद्धान्त को समझाने के लिए लिखी जाती है।

यह व्यक्ति जिस समय आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में दीक्षित हुआ उससे पहले से ही कोई व्यक्ति उसके धन का अपहरण करने के लिए इसके प्रति घातक वृत्ति रखता था। उसका यह प्रबल संस्कार बन चुका था कि इस व्यक्ति को किसी भी प्रकार का प्रलोभन देकर मार दिया जाय। किन्तु प्रयास करने पर भी वह अपनी मनोवृत्तियों को सफल नहीं बना सका था। जिस समय यह व्यक्ति योग दीक्षा प्राप्त करके अन्तर्जगत में प्रविष्ट हुआ और बराबर ध्यानाभ्यास करने लगा तो कुछ

दिन के अभ्यास के बाद उसने ध्यान में देखा कि वह व्यक्ति आया है और उसने अपने मनवांछित तरीके से उसके धन का अपहरण कर लिया है और उसके शरीर में तीव्र शस्त्र झोंक कर उसकी मृत्यु कर डाली है। सूक्ष्म जगत में उसने इस दृश्य को देख लिया और भुगतान कर लिया। निबटने वाला संस्कार सूक्ष्म में निबट गया। ध्यानाभ्यास से उठने के बाद सूक्ष्म शरीर में जहाँ शस्त्र प्रहार हुआ था, वह स्थान काफी दर्दयुक्त कई रोज तक अनुभव में आता रहा, किन्तु इस संस्कार के भुगत जाने के बाद उस व्यक्ति के साथ इसका न कोई विरोध रहा और न ही प्रतिघाती व्यक्ति का कोई विरोधी धन के अपहरण की भावना से जो उस व्यक्ति का द्वेष उसके प्रति चलता था वह बिल्कुल ही ऐसे समाप्त हो गया जैसे कोई विरोधी संस्कार था ही नहीं। इसी का अर्थ यह कि उसका यह प्रबल संस्कार तत्काल भुगत भी गया और बाद में विच्छिन्न भी हो गया।

इस प्रकार जो ध्यानाभ्यासी लोग है उनके संस्कार ध्यानयोग के प्रभाव से तनु होकर विच्छिन्न हो जाया करते है। फिर उनका स्थूल शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, बस आजकल लोक-प्रवाह में भी कई एक लोग स्वप्न ज्ञान की बाते कहा करते है, यदि स्वप्न में कोई व्यक्ति अपने आप को मरते हुए देख लेता है तो उसका फल सभी लोग बतलाया करते है कि बस ! आयु बढ़ गयी। उसका अर्थ सही है कि कोई कठिन कर्मविपाक तो था ही किन्तु वह अन्तर्जगत में ही निबट गया। इसलिए योगाभ्यासी साधकों को चाहिये कि वे लोग प्रकाश–क्रिया स्थितिशील, पंचमहाभूतात्मक एवं पंच–ज्ञानेन्द्रियात्मक इस दृश्य का अपवर्गार्थ दर्शन करें। जो लोग अन्तर्जगत के द्रष्टा बन करके सम्प्रज्ञात समाधि में प्रवेश कर जायेंगे, उनके उदार संस्कार ही लब्धवृत्ति न होकर के तनु एवं विच्छिन्नता का रूप अवश्य ही धारण कर लेंगे। ऐसी स्थिति में साधक अनेक प्रकार की लौकिक व्याधाओं से बिल्कुल–बिल्कुल निकल जायेगा और यही अन्तर्जगत के दृश्य उस साधक को उत्तरोत्तर योगारूढ़ करते चले जायेंगे। यह एक स्वाभाविक नियम की बात है।

जब कोई योगी योगाभ्यास करता है तो उसकी अन्तरात्मा में छुपे रहने वाले वह परम गुरु जो कालगति से सदा ही परे है, उसको अन्तःप्रेरणा देते रहेंगे और साधक यह भली प्रकार से समझता होगा कि उसके बाद यह भूमिका है और उसके बाद यह दूसरी अन्तःभूमि है। इस प्रकार अभ्यास करता हुआ साधक अपने कर्म विपाक को दृश्य–जन्मसंवेदनीय संस्कारों के साथ बिल्कुल निर्मल बनाकर के वासनाओं का क्षय भी कर डालेगा। जिसके फलस्वरूप जन्म–मरण के चक्र से वह बिल्कुल बच जाने का अवसर पा लेगा। ☐☐☐

सच्चिदानन्द रूपाय व्यापिने परमात्मने,
नतः श्री गुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थिभेदिने।

अर्थात् सच्चिदानन्द रूप व्यापक परमात्मा गुरु नाथ को मैं प्रणाम करता हूँ, क्योंकि वे ही अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं।

तस्माद्योगी भवार्जुन

आचार्य (डा.) दासलाल शर्मा

श्रीमद् भगवद्गीता के छठे अध्याय में योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आज्ञा दी – अर्जुन ! तुम योगी बनो। क्योंकि योगी तपस्वियों से, ज्ञानियों से तथा कर्मकाण्डियों से सर्वश्रेष्ठ है। अर्जुन भगवान के सखा, सम्बन्धी तथा इष्टमित्र हैं, इसलिए अर्जुन के लिए परम कल्याण की बात कहेंगे ही। योगी बन जाने पर ही मनुष्य जीवन की सफलता तथा पूर्णता है। '**योगः समाधिः समाधिर्व योगः**। योग समाधि का नाम है व समाधि ही योग है। ऐसा योगसूत्र की व्याख्या करते हुए भाष्यकार व्यासदेव जी ने कहा है। योगी बनने के लिए अर्जुन को क्या करना होगा? यह विचारणीय बात है। क्या अर्जुन को गृहस्थ व घर–द्वार छोड़कर वनों में जाना होगा अथवा काषाय वस्त्र धारण करना होगा या और कोई विशेष वेशभूषा धारण करना होगा? नहीं–नहीं, अर्जुन को ऐसा कुछ नहीं करना होगा। अर्जुन को अपने अन्दर 'अर्हता' प्राप्त करनी होगी। लौकिक जगत में भी किसी व्यक्ति को ऊँची पदवी प्राप्त करने के लिए 'अर्हता' की बात आती है। 'अर्हता' (Elegibility) होने पर ही वह ऊँचे पद को पा सकता है। शास्त्रों में उत्तम ज्ञान को प्राप्त करने के लिए उत्तम अधिकारी की बात कही गयी है। आज योग शब्द काफी परिचित शब्द बन गया है, किन्तु सामान्य व्यक्ति जिस अर्थ में इसे लेता है वह स्वास्थ्य योग तथा रोगहर योग के रूप में जानता है। जन्म–मरण रूप दुःख की अत्यन्त निवृत्ति जिस साधन से होती है उसे अध्यात्म योग व ध्यान योग कहते हैं। उस योग से ही मन बुद्धि निर्मल बनाकर साधक आत्मदर्शन का अधिकारी बनता है। मनुष्य को अपनी चेतना शक्ति (Stream of consciousness) का सकारात्मक दिशा में प्रयोग करना सीखना होगा।

मनुष्य को परमात्मा ने चेतना की सर्वश्रेष्ठ शक्ति दी है। देखने की बात यह है कि हम उसे किस दिशा में प्रयोग करते हैं? आज मनुष्य ने भौतिक विज्ञान में बहुत उन्नति की है, इसी से सुख और भोग के प्रचुर साधन प्राप्त हो गये हैं, किन्तु फिर भी मनुष्य दुःखी होता जा रहा है। योग की शिक्षा से चित्त की वृत्तियों पर नियन्त्रण करने की प्रक्रिया को समझकर अपने पर नियंत्रण करने पर ही योग में प्रगति मिल सकती है। इसलिए भौतिक ज्ञान के साथ–साथ अध्यात्म ज्ञान के मार्ग पर चलने की आवश्यकता है। इसके अभाव में मनुष्य कभी भी शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकेगा। लंकापति रावण ने अपने बौद्धिक विज्ञान से ग्रह–नक्षत्र, मानव, दानव सभी को अधिकार में ले लिया था, किन्तु वृत्ति पर काबू न होने के कारण वह अपयश व नाश को ही प्राप्त हुआ।

उपनिषद् में आया है – '**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः न मेधया न बहुना श्रुतेन**' – अर्थात् यह आत्मा न प्रवचन कला से प्राप्तव्य है और न ही बुद्धि की प्रखरता से, तथा न ही ज्ञान के

विषय में बहुत सुनने से आत्मा का दर्शन हो सकता है। आत्मा के दर्शन तो उस व्यक्ति को हो सकता है जिसका आत्मा अधिकारी समझकर वरण कर ले, उसे ही आत्मा अपने स्वरूप को प्रकट दर्शन देता है। तुलसीदास जी ने भी रामचरित मानस में इसी भाव को व्यक्त करते हुए लिखा है – **सोई जाने जिन देहू जनाई। जानत तुम्हीं तुम्हीं होई जाई।।**

सद्‌गुणों अथवा दैवी सम्पदा को धारण करना ही योगी के आभूषण है। दैवी सम्पदा का होना योगी की प्राथमिक अर्हता है। सद्‌गुणों को विकसित व धारण किये बिना कोई योगी नहीं बन सकता। दैवी सम्पदा मुक्ति का कारण है, ऐसा भगवान ने गीता में कहा है। दैवी सम्पदा का सार रूप निकालकर योगाचार्यों व ऋषियों ने साधकों के सामने रखा है, जिनका पालन साधक के लिए अपरिहार्य है। इन नियमों में सर्वप्रथम अहिंसा है। चाहे कोई गृहस्थ आश्रम में हो, ब्रह्मचारी या सन्यासी हो सभी के लिए इस नियम व व्रत का पालन अत्यावश्यक है। इसके बिना योग साधना में उन्नति नहीं होती। इस व्रत के पालन से योगी के अन्दर अलौकिक शक्ति आ जाती है। हिंसक से हिंसक प्राणी भी ऐसे व्रत में प्रतिष्ठित योगी के सम्मुख द्रोह व वैर भाव त्याग देते हैं। अहिंसा की प्रतिष्ठा के बिना समाधि की पुष्टि नहीं हो सकती। यही ब्रह्मोपासना की आधारभित्ति है।

दूसरी अर्हता योगी की 'सत्य' है। मन, वाणी तथा कर्म में एकरूपता का नाम ही सत्याचरण है। सत्य की प्रतिष्ठा से, संकल्पमात्र से क्रिया का फल मिल जाया करता है। योगी की वाणी अमोघ हो जाती है। सत्य के बल से ही ब्रह्म की पहचान की जा सकती है। जो सदाचारी नहीं है उसे वेद भी पवित्र नहीं कर सकते।

योग मार्ग में तीसरी विशेष 'अर्हता' है ब्रह्मचर्य पालन की। शरीर में वीर्य ब्राह्मी शक्ति के रूप में विद्यमान है। उसका सब प्रकार से रक्षण होना चाहिये। दुश्चिंतन का सर्वथा त्याग एवं ध्यानाभ्यास से ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा होती है। अस्तेय या अचौर्य के भाव की पुष्टि भी आवश्यक है। आवश्यकता से अधिक सामग्री व साधनों का संग्रह परिग्रह कहलाता है। इसका भी त्याग करना चाहिये। इन पूर्वोक्त नियमों के पालन से अलौकिक परिणाम सामने आते हैं। इसके अतिरिक्त शरीर को भीतर–बाहर से शुद्ध रखना, मन में सन्तोष धारण करना, सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास को सहन करते हुए शरीर को साधना के अनुकूल बनाना 'तप' कहलाता है। मन के संतुलन को बनाये रखते हुए गुरुमंत्र का जाप, ईश्वर व गुरु में भक्ति रखते हुए आत्मचिंतन करते रहना चाहिये। यही व्रत योग में यम–नियम के नाम से जाने जाते हैं। इन नियमों का पालन योगी के लिए जीवन पर्यन्त आवश्यक है, अन्यथा ऊँची स्थिति प्राप्त कर लेने पर भी योगी मार्ग से च्युत हो जाता है। इसलिए योगी को सदा ही सतर्कता (awareness) के साथ इनका पूर्ण पालन करते हुए मन को संतुलित रखना चाहिये। **'समत्वं योग उच्यते'** का यही तात्पर्य है। योग साधक को वेदान्त के सिद्धान्तों का भी मनन करते रहना चाहिये सद्–असद् का विचार वेदांत का सार है। विवेक ज्ञान की उत्पत्ति में यह विचार सहायक बनता है, इसी से समाधि अवस्था की ओर चित्त उन्मुख

होता है। योगशास्त्र में अविद्या तथा तज्जन्य क्लेशों की निवृत्ति ही साधना का लक्ष्य माना गया है।

योग सार्वभौम विद्या है। इसलिए व्यक्ति इसे अपनाकर जीवन में कल्याण के शिखर तक पहुँच सकता है। इस विद्या के समान मनुष्य को पवित्र करने वाली दूसरी वस्तु नहीं है। व्यक्ति सांसारिक जीवन जीते हुये योगी बन सकता है, यदि यौगिक पद्धति से जीवन जीना सीख लिया हो तो भगवान ने सदा योगयुक्त रहने की बात कही है– **तस्मात् सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन**। योग से निरन्तर जुड़े रहने के लिये प्राथमिक अवस्था में प्राण साधना व अजपा साधना का अवलम्ब लिया जा सकता है। हर श्वास में ब्रह्म की अभिव्यक्ति हो रही है। निरन्तर प्राण स्पन्दन हो रहा है, एक क्रिया हो रही है। इसे सिद्धगुरु के उपदेश से समझ कर अभ्यासरत रहने पर इसके अद्भुत प्रभाव को साधक अनुभव कर सकता है। सांसारिक कार्यों को सम्पादित करते हुये भी इसका अभ्यास किया जा सकता है। परिपक्वावस्था आ जाने पर स्वतः ही क्रिया चलती रहती है – इसे ही **सहज योग** कहते हैं। यही युक्त योग की अवस्था बन जाती है। साधक तीव्र संवेग से कुछ वर्षों तक इसका अभ्यास कर ले तो अनायास ही क्रिया चलती रहती है, जिसका साधक को निरन्तर बोध बना रहता है। गुरु मूर्ति का ध्यान भी योग युक्त होना है, अपने इष्ट के रूप का ध्यान चित्त में बना रहे तो यह योग-युक्त स्थिति ही कही जायेगी। परम चेतना सत्ता का सतत् चिन्तन, चाहे वह किसी भी रुप में, साकार–निराकार रूप में हो योग युक्तता की ओर ही ले जायेगा।

मानव मात्र योग का अधिकारी है इसमें उन्नति कर सकता है। इसमें सर्वप्रथम बात श्रद्धा की है, रुचि की है। योग सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त करके योग के महत्व को समझ ले। फिर योग के ज्ञाता गुरु देव से उसकी सांगोपांग विधि का उपदेश प्राप्त कर साधना में जुट जाये। सांसारिक व्यापार धन्धे व जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुये लोगों को योग में प्रवेश व उन्नति प्राप्त करते देखा जाता है। योग विद्या की पराकाष्ठा को प्राप्त करना कठिन तो है ही **''अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्''** अनेक जन्मों के पुरुषार्थ से ही संसिद्धि रूप लक्ष्य को पाया जाता है। इसलिये मनुष्य को जब भी योग का मार्ग मिल जाये उसमें आरुढ़ हो जाना चाहिये। इसी से जीवन में उन्नति मिलती है और वह मुक्ति को भी पा सकता है।

□□□

सर्वशक्तिमान् ईश्वर सभी शक्तियों तथा प्रज्ञा का एवं पवित्रता, प्रेम, शान्ति, आनन्द और ज्ञानशक्ति का भण्डार है। उससे कुछ भी माँगने की आवश्यकता नहीं है, केवल स्वयं उसके समीप बैठने की, अपने आपको उसके समीप, उसके अन्दर अथवा उसको अपने अंदर अनुभव करने की आवश्यकता है, अपना हृदय प्रेम, शान्ति एवं आनन्द से भरपूर हो जायेगा। ये सभी आपको स्वतः प्राप्त होंगे।

वैराग्य

–जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर –

मनुष्य के चित्त की पाँच अवस्थायें होती है–

1. **मूढावस्था** : इस अवस्था में प्राणी तम प्रधान होते है। आलस्य, निद्रा आदि में ये प्राणी सदैव रत रहते है।

2. **क्षिप्तावस्था** : इस अवस्था में मनुष्यों में रजोगुण की प्रधानता होने से उनमें राग–द्वेषादि की मात्रा अधिक होती है। इस अवस्था का व्यक्ति कभी धर्म और कभी अधर्म में प्रवृत्त होता रहता है। यह अवस्था साधारण मनुष्यों की होती है।

3. **विक्षिप्तावस्था** : इस अवस्था में सत्वगुण की प्रधानता रहती है और रजोगुण गौण रूप से रहता है। इस कारण मनुष्य में धर्म, ज्ञान और वैराग्य की वृद्धि होती है। परन्तु रजोगुण चित्त को विक्षिप्त करता रहता है। यह अवस्था जिज्ञासुओं की होती है। परन्तु योग की नहीं होती है।

4. **एकाग्रावस्था** : जब चित्त किसी एक ही विषय में तैलधारावत् निरन्तर टिका रहता है, तब उसको एकाग्रतावस्था कहते है। इस अवस्था को सम्प्रज्ञात समाधि कहते है।

सम्प्रज्ञात समाधि की वितर्कानुगत समाधि में स्थूल महाभूतों का साक्षात्कार होता है। पृथ्वी, पर्वत, जंगल, नदियां, समुद्र आदि का साक्षात्कार होता है। सम्प्रज्ञात समाधि की विचारानुगत समाधि में सूक्ष्म महाभूतों (तन्मात्राओं) का तथा दिव्य देवी–देवताओं का साक्षात्कार होता है.परन्तु योगी इन साक्षात्कारों को अनुभवों में प्रियता न रखते हुए अपनी साधना में निरंतर रत रहता है। विचारानुगत समाधि को निर्विचार समाधि से– '**निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्म प्रसादे**' (1/47) –इस स्थिति में आकर योगी का चित्त निर्मलता एवं सात्विकता को धारण करता है। इसी को अध्यात्म प्रसाद कहते है। अर्थात् योगी की बुद्धि में स्थिरता रहती है और प्रसाद अर्थात् प्रसन्नता और निर्मलता उत्पन्न होती है। इसी अध्यात्म प्रसाद से जो प्रज्ञा उत्पन्न होती है, उसका नाम ऋतम्भरा प्रज्ञा है। अर्थात् योगी की बुद्धि सत्य को धारण करने वाली हो जाती है। इस स्थिति में आकर योगी को अपर वैराग्य की अनुभूति होती है।

अपर वैराग्य :

'**दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्**' (1/15) वशीकार वैराग्य में देखे हुए और सुने हुए विषयों से तृष्णारहित अर्थात योगी की उपेक्षा बुद्धि हो जाती है। उसके चित्त की इस एकाग्रता के कारण मल रागादि दोष समाप्त हो जाते है। इस अवस्था को वशीकार वैराग्य कहते है। वशीकार का अर्थ है कि योगी विषयों के वशीभूत नहीं होता है, बल्कि ये विषय (पाँचों विषय) योगी के

वशीभूत हो जाते है। इसी को अपर वैराग्य कहते हैं।

पर वैराग्य :

असम्प्रज्ञात समाधि की अन्तिम अवस्था में अस्मिता का साक्षात्कार होता है। योगी इस स्थिति में 'अस्मि' वृत्ति से असीम आनन्द का अनुभव करता है। जो योगी इस आनन्द को अपना अंतिम लक्ष्य नहीं मानते है, वे अपनी साधना में रत रहते हैं।

अस्मितानुगत समाधि की इस अन्तिम अवस्था में युक्त योगी 'सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनम्।' अर्थात युक्त योगी समस्त प्राणियों की आत्माओं को अपने में स्थित तथा समस्त प्राणियों में अपने आपको देखता है। इस अन्तिम अवस्था में योगी की बुद्धि के रजोगुण और तमोगुण सम्बन्धी संस्कार नष्ट हो जाते हैं। और सतोगुण के संस्कार शेष रह जाते हैं। इस समय योगी पुरुष और प्रकृति की भिन्नता का अनुभव करता है। प्रकृति और पुरुष की इस भिन्नता की अनुभूति को विवेक ज्ञान या विवेकख्याति कहते हैं।

'तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्' (1/16)

इसके पश्चात् योगी गुणातीत हो जाता है। उसका सतोगुण से भी मोह नष्ट हो जाता है। योगी को विवेकज्ञान होने से तीनों गुणों से तथा उनके कार्यों से किंचिन्मात्र भी तृष्णा नहीं रहती है। और योगी निष्काम हो जाता है। वह दुःख में उद्विग्न नहीं होता है और सुख में स्पृहा नहीं रखता है। इस राग रहित अवस्था को पर वैराग्य कहते हैं।

'विरामप्रत्ययाभ्यास पूर्वः संस्कार शेषोऽन्यः।' (1/18)

पर वैराग्य की प्राप्ति हो जाने पर चित्त संसार के पदार्थों की ओर आकर्षित नहीं होता है। उसकी चंचलता समाप्त हो जाती है। चित्त उपराम हो जाता है। इस उपरत अवस्था की प्रतीति का नाम ही विराम प्रत्यय है।

'यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योग सेवया।'

यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति।।' गीता 6/20

योग का सेवन करने से जिस अवस्था में निरुद्ध चित्त उपराम हो जाता है तथा योगी इस अवस्था में आकर अपने आपमें अपने आप को देखता हुआ अपने आपमें सन्तुष्ट हो जाता है। योगी की यह पूर्णता की अवस्था है।

5. **निरुद्धावस्था** - यह चित्त की पाँचवी और अन्तिम अवस्था है। चित्त उपरामता को प्राप्त हो जाता है। उपराम का तात्पर्य यह है कि चित्त का संसार से तो कोई प्रयोजन रहा नहीं और प्रकृति का अंश होने से चेतन स्वरूप को पकड़ सकता नहीं। जब चित्त की उपराम प्रतीति का अभ्यास क्रम बन्द हो जाता है, उस समय चित्त की वृत्तियाँ पूर्णतः बन्द हो जाती है। केवल मात्र उपरत अवस्था के संस्कार शेष रह जाते हैं।

व्युत्थान निरोध संस्कारयोरभिभव प्रादुर्भावौ निरोधक्षण चित्तान्वयो निरोधपरिणामः ।(3/9)

अर्थात चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों का अभाव हो जाने पर भी उसके संस्कार शेष रह जाते है। अतः निरोधकाल में चित्त व्युत्थान और निरोध दोनों ही प्रकार के संस्कारों में व्याप्त रहता है। उस निरोधकाल में व्युत्थान के संस्कारों का दब जाना और निरोध संस्कारों का प्रकट होना ही निरोध

परिणाम है।

निरोध परिणाम के पश्चात् **'तस्य प्रशान्त वाहिता संस्कारात'** (3/10)। अर्थात् जब व्युत्थान के संस्कार सर्वथा दब जाते हैं, उस समय उस संस्कार मात्र चित्त में निरोध की अधिकता से केवल निर्मल निरोध संस्कारधारा चलती रहती है। यह निरुद्ध चित्त का अवस्था परिणाम है। फिर निरोध संस्कारों के क्रम की समाप्ति हो जाने से वह चित्त भी अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाता है और योगी अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। यही योगी की स्वरूपस्थिति या कैवल्य स्थिति है।

'ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकांचनः॥ 6/8 गीता

जब योगी पूर्णत ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा हो जाता है। प्रकृति के सारे रहस्यों को वह जान जाता है। प्रकृति पर उसका पूर्ण अधिकार हो जाता है। दूरश्रवण, दूरदर्शन, दूरगमन आदि शक्तियाँ उसको स्वतः प्राप्त हो जाती हैं।

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमि प्रज्ञा' (2/27)

पुरुष और प्रकृति के भेद को जानकर योगी की प्रज्ञा (बुद्धि) अन्तिम स्थिति वाली हो जाती है। अर्थात् सात प्रकार की उत्कर्ष अवस्था वाली बुद्धि उत्पन्न होती है। उनमें पहली चार प्रकार की तो कार्य विमुक्ति की द्योतक है और अन्तिम तीन चित्त विमुक्ति की द्योतक है।

कार्य विमुक्ति प्रज्ञा अर्थात् कर्तव्यशून्य अवस्था के निम्नलिखित चार भेद है -

1. **ज्ञेय शून्य** : अर्थात् जो जानना था, वह जान लिया, अबकुछ भी जानना शेष नहीं रह गया है।

2. **हेय शून्य** : जिसका अभाव करना था, उसका अभाव कर लिया। अर्थात् दृष्टा-दृश्य के संयोग का अभाव हो गया।

3. **प्राप्यप्राप्त अवस्था** : जोकुछ प्राप्त करना था, वह प्राप्त कर लिया। अब कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह गया है।

4. **चिकीर्षाशून्य अवस्था** : जो कुछ करना था, वह कर लिया। अब और कुछ भी करना शेष नहीं रह गया है।

चित्त की स्थिति :

1. **चित्त की कृतार्थता** : चित्त ने अपना अधिकार भोग और अपवर्ग देना पूरा कर दिया, अब उसका कोई प्रयोजन नहीं रह गया है।

2. **गुण लीनता** : चित्त अपने कारण रूप प्रकृति और उसके गुणों में लीन हो जाता है। क्योंकि अब उसका कोई कार्य शेष नहीं रह गया है।

3. **आत्मस्थिति** : पुरुष (योगी) सर्वथा गुणों से अतीत होकर अपने स्वरूप में अचल भाव से स्थित हो गया।

□□□

योग तत्व मीमांसा

स्वामी इन्द्रानन्द उदासी, बगदा (आगरा)

मीमांसा शब्द 'मान ज्ञाने' से जिज्ञासा अर्थ में 'माने जिज्ञासायाम्' निष्पन्न होता है अर्थात् किसी तत्व पदार्थ या वस्तु के स्वरूप निर्धारण के लिए ऊहापोह पूर्वक विचार करना मीमांसा कहलाता है। उस मीमांसा के बाद ही उस विषय में सच्ची जिज्ञासा उत्पन्न हो पाती है। बिना विषयवस्तु की मीमांसा के जो जिज्ञासा हो उठती है वह मात्र कौतूहल ही है और इस कौतूहल की उस विषयक ज्ञान में कोई गहरी पैठ नहीं होती। यहाँ हमारे सामने विषय है–दार्शनिक योग। योग एक पारिभाषिक शब्द (Teck-word) है। आध्यात्मिक साहित्य का तो निश्चय ही सर्वाधिक प्राचीन और सर्वाधिक महत्वपूर्ण शब्द है ही, साथ ही ज्योतिष गणित और आयुर्वेद आदि में भी यह अपने–अपने विशिष्ट अर्थों में बहुलता से प्रयुक्त हुआ मिलता है। संस्कृत व्याकरण के अनुसार योग शब्द 'युज' धातु में घञ् प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है। युज धातु तीनों गणों में पायी जाती है।

युज् = समाधौ = समाधि अर्थ में

युजिर = योगे = जोड़ अर्थ में

युज = संयमने = संयमन अर्थ में

दृष्टिकोण भेद से संस्कृत वाङ्मय में इन तीनों अर्थों वाले योग शब्दों का प्रयोग होता रहा है।

उपरोक्त लेख का विषय दार्शनिक योग, योग दर्शन अथवा महर्षि पतञ्जलि योग दर्शन है, जो युज समाधौ से समाधि अर्थ में ही है। सांख्य प्रवचन भाष्य में भाष्यकार व्यासजी महाराज ने प्रथम सूत्र की व्याख्या में स्पष्ट ही लिखा है कि योगः समाधिः। भाष्य को **'सांख्य प्रवचन भाष्य'** नाम देना महत्वपूर्ण है। आदि विद्वान परमर्षि कपिल, जिन्हें गीता में 'सिद्धानां कपिलो मुनिः' कहके याद किया गया है और उपनिषद् में **"ऋषिः प्रसूत कपिल यस्तमग्रे, ज्ञानैर्विभूति"** कहकर जिनकी स्तुति की गयी है, उनका सांख्य दर्शन ही योग की दार्शनिक पृष्ठभूमि में है। पतञ्जलि दर्शन का तत्व मीमांसात्मक ज्ञान कपिल सांख्य शास्त्र समान ही है। दार्शनिक योग का विचार करते ही हमारे सामने सांख्यदर्शन का आना स्वाभाविक ही है। योगदर्शन के प्रथम सूत्र में सूत्रकार ने 'अनुशासन' कहकर अपने पूर्व के कपिल पञ्चशिखा आदि सांख्य योगियों की तरफ ही इशारा किया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि **'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्य पुरातन'** और यहाँ हिरण्यगर्भ यानी कपिल ही है। बात को सरलता और सुगमता की दृष्टि से समझने–समझाने को यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि योग 'प्रैक्टीकल' है और सांख्य 'थ्योरी'। दार्शनिक दृष्टि से सांख्य द्वैतवादी है। यानी सम्पूर्ण जगत के मूल में जड़ और चेतन दो अनादि पदार्थों को मानता है। चेतन पुरुष और जड़ प्रकृति के संयोग से ही जगत अस्तित्व में आता है। यद्यपि यह जड़ चेतनात्मक संयोग अविद्याजनित ही है, वास्तविक नहीं। प्रकृति त्रिगुणा एवं परिणामी है। पुरुष नित्य निष्क्रिय अपरिणामी व निस्त्रैगुण्य है। प्रकृति पुरुष दोनों संख्या रहित हैं। यद्यपि सांख्य दर्शन में पुरुष का बहुत्व स्वीकार किया गया है, परन्तु यह व्यष्टि अन्तःकरण की उपाधि को लेकर ही है–

'जन्मादि व्यवस्थातः पुरुष बहुत्वम' सा.द. 1/149

जैसे एक ही चन्द्रमा अनेक घड़ों के जल में प्रतिबिम्बित होकर अनेक हुआ दीखता है।

'उपाधि भेदेप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः' सा.द. 1/150

उपाधि भेद में भी एक का नाना प्रतीत होता है।

'उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान्' सा.द. 1/151

उपाधि का भेद होता है, न कि उपाधि वाले का।

सांख्ययोग की दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि सांख्य की प्रकृति त्रिगुणात्मक है। सत्व, रज, तम उसके तीन गुण है। इन गुणों की साम्यावस्था ही मूल प्रकृति यानि जगत का मूल कारण है। प्रकृति शब्द का अर्थ ही कारण है। कार्य को देखकर कारण का अनुमान लगाया जा सकता है। जगत में त्रिगुण की वैषमावस्था को देखकर साम्यावस्था का अनुमान किया जाता है। मूल प्रकृति का साक्षात्कार संभव नहीं। कार्य यानि विकार विकृति। अनुमानिक मूल प्रकृति की साम्यावस्था पुरुष के संयोग से विकृत होकर 24 परिणाम पैदा करती है। यही परिणामवाद है।

प्रकृतेर्महास्ततोअहंकारस्तस्माद्गणश्चणो तस्मादपि षोडशकोत पंचभूतानि। सां.का. 22

यही बात गीताजी में है–

महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च।

इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः।। (गीता 13/5)

ये 24 परिणाम जड़ प्रकृति के है और पच्चीसवां चेतन तत्व पुरुष जड़ के सम्बन्ध में जीव तथा ईश्वर और अपने शुद्ध स्वरूप में परमात्म तत्व कहलाता है। गीता अध्याय 13 में भी '**उपद्रष्टानुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः। परमात्मेति चाप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः।।** (गीता 13/22) कहकर यही बात कही गयी है।

सच तो यह है कि सांख्य योग का पुरुष तत्व तो चेतन मात्र है। उसमें बन्ध मोक्ष जैसा या फिर जीव ईश्वर जैसा कोई परिणाम या कार्य नहीं होता, यह सब प्रकृति में होकर पुरुष में कहे भर जाते हैं। जैसे हार–जीत सेना में होकर राजा में कही जाती है। सांख्य कारिका 62 में स्पष्ट ही कहा है–

'तस्मान्न बध्यते न मुच्यते नापिसंसरति कश्चित्

संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः। (कारिका 62)

अर्थात् साक्षात न कोई बद्ध होता है और न कोई छूटता है। न कोई जन्मान्तर में घूमता है। प्रकृति ही आश्रय वाली हुई घूमती, बंधती व छूटती है।

दार्शनिक द्वैताद्वैत के बौद्धिक विवाद में पड़ना निश्चय ही हमारे इस लेख का न तो उद्देश्य है और न हमें रुचिकर। इस विषय में हमारी स्पष्ट धारणा है कि परमर्षि कपिल का प्राचीन सांख्य और भगवान शंकराचार्य का ब्रह्मवाद मूलतः दोनों एक ही बात कहते है और दोनो ही बौद्धिक है। एक अनुमान प्रमाण को मुख्य मानता है, तो दूसरा आगम प्रमाण को। एक यहाँ से यानी जीव के दुखों को हटाकर मुक्त होना चाहता है, तो दूसरा परमानन्द स्वरूप ब्रह्म को जानकर कृतकृत्य होना चाहता है। दोनों में जो विशेष खींचतान भरा अन्तर दृष्टिगोचर होता है वह साम्प्रदायिक देन है। अपने –अपने दर्शन का वैशिष्ट्य सिद्ध करने की जोड़तोड़ है। ईमानदारी तो यह है कि कपिल और पातंजलि ही आज की साइंस और बुद्धि के ज्यादा नजदीक हैं। उदाहरण के लिए योग दर्शन के निम्न सूत्र पर ध्यान दे लेते है–

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्। (यो.द. 2/20

सूत्रार्थ है कि पूर्ण योगी के लिए जगत नष्ट होकर भी नष्ट नहीं होता, क्योंकि यह जगत साझा वस्तु है। जगत का मूल कारण प्रकृति नित्य है और परिणामी है। सो एक पुरुष के लिए अपना प्रयोजन पूरा करके अन्य पुरुषों के लिए कार्यरत रहती है। अर्थ है पूर्ण पुरुष के लिए जगत का प्रयोजन नहीं रहता। जगत स्वरूप से नष्ट नहीं हो जाता। जैसे किसी निरामिष व्यक्ति के लिए शहर में कसाई की दुकान कहाँ है, कैसी है, है कि नहीं है–इस सब जानकारी का प्रयोजन नहीं रह जाता। पूर्ण पुरुष अपने स्वरूप में पहुँच कर नित्य तृप्ति का अनुभव पा जाता है वह पुरुष सम्पूर्ण दुखों से परे ब्राह्मी स्थिति में पहुँच कर परम और शाश्वत शान्ति को पा जाता है। ऐसी ब्राह्मी स्थिति प्राप्त योग और योगियों की चर्चा से गीता, उपनिषद आदि शास्त्र भरे पड़े है। श्री रामचरित मानस में तुलसीदास जी कहते है

दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज काहूहि न व्यापा॥ – ये रामराज वाली स्थिति है। इसी प्रसंग को अगर तथाकथित अद्वैतवाद की दृष्टि से लें तो जगत तीन काल में नहीं है। सिद्धान्त आगम प्रमाण की ही अपेक्षा करता हुआ जान पड़ता है। यह दृष्टि बुद्धिवाद की और तर्क की भी उपेक्षा करती है, जो हास्यास्पद ही है। हाँ, ब्रह्म के लिए जगत तीन काल में नहीं रहता। यह तो द्वैतवादी सांख्य और योग को भी स्वीकार्य है। निगलितार्थ है सांख्य ही वेदान्त है और वेदान्त ही सांख्य है।

तथाकथित अद्वैतवादी अपनी दार्शनिक मान्यता का वैशिष्ट्य और सांख्य योग का खण्डन करने के लिए कपिल को अनीश्वरवादी सिद्ध करते हैं, जबकि स्वयं अद्वैतवाद के अनुसार जीव जगत ही माया का परिणाम है और बिना हुए ही दिखाई दे रहा है तो जगत निर्माता तो अस्तित्वहीन ही है। पंचदशाकार श्रीविद्यारण्य स्वामी ने लिखा है **'जीव और ईश्वर माया रूपी गऊ के दो बछड़े हैं। अपनी माँ का दूध पीकर खूब स्वस्थ रहें।'** इसी संदर्भ में कुछ महापुरुष योग और सांख्य में विघटन फैलाने की दृष्टि से योग में 26 तत्व बताकर योग को सेश्वर सिद्ध करना चाहते हैं और सांख्य को 25 तत्वों का बताकर निरीश्वर सिद्ध करते हैं, जबकि सच्चाई यही है कि योगी और सांख्य दोनों 25 तत्व वाले हैं। पच्चीसवाँ तत्व पुरुष विशेष यानी अनादि विद्या के साथ पुरुष ही है और इसी विद्या के कारण वह पुरुष 5 क्लेश, 3 कर्म, सुख दुःखात्मक उन कर्मों के फल व उनकी वासना रूप संस्कारों से सर्वथा अनछुआ रहता है–

'क्लेश कर्म विपाकाशैरपरामृष्टपुरुष विशेष ईश्वरः। (यो.द. 1–24)

पुरुष विशेष को ऐसे ही लेना चाहिये जैसे पशु विशेष या वृक्ष विशेष। योनी है तो पशु या वृक्ष ही पर कुछ विशेषता के साथ, अर्थात है तो पुरुष ही जो सांख्य का 25 वाँ ही है। इस प्रकार के ईश्वर की मान्यता तो सांख्य में भी है। सूत्र ही है – **'ईदृशेश्वरसिद्धि सिद्धा'** (सां.द. 3–57) अर्थात इस प्रकार की ईश्वर की सिद्धि सिद्ध है। जिस सूत्र के आधार पर सांख्य को अनीश्वरवादी सिद्ध किया जाता है, वहाँ पुरुष से भिन्न किसी छब्बीसवें तत्व का नकार ही अभीष्ट है।

अन्त में एक बात और महत्वपूर्ण और विचारणीय है। योग और सांख्य दोनों जमीनी हकीकत को लेकर यानी जीव, जीव की मूल समस्या दुःख को लेकर विचार शुरू करते हैं और फिर उसके समाधान रूप मोक्ष मुक्ति के स्वरूप का निर्धारण करते हैं, जबकि वेदान्त दर्शन परमानन्द रूप ब्रह्म से विचार का प्रारम्भ करता है। सांख्य योग का मानना है कि जीव की जिज्ञासा का विषय दुःखों से छूटना है– **'अथत्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः।'** (सां.द.) दुःखों से सर्वथा मुक्त ही कृतकृत्य है। ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ सुख या परमानन्द प्राप्ति जैसी कोई चर्चा नहीं है और उस दुःख का कारण माना गया है प्रकृत पुरुष का अनादि अविद्या जनित संयोग। योगांगों के अनुष्ठान से ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त होकर विवेक ख्याति यानी प्रकृति पुरुष के स्वरूपों की भिन्नता का ज्ञान हो जाता है। द्रष्टा जीव जो अब तक चित्तवृत्तियों के अनुरूप अपने को देख रहा था, वह अब अपने स्वरूप को जानकर निर्दुःख दशा को प्राप्त हो जाता है। यही उसका अपवर्ग निर्वाण कैवल्य मोक्ष आदि माना गया है।

वेदान्त ब्रह्मवाद या मायावाद जहाँ परमानन्द रूप ब्रह्म की प्राप्ति को जीव का चरम व परम उद्देश्य मानता है, वहीं सांख्य व योग पुरुष को निर्धर्मक मानकर साधना में आनन्द की अभिव्यक्ति को पूर्णता में बाधक मानता है – 'नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वात्'

लेख के सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि–

'भवतापेन तप्तानां योगोहि परमौषधम्' अर्थात् जगत में त्रिविध दुःखों से परेशान जीवों के उद्धार के लिए योग ही परमौषधि है। महर्षि पतंजलि ने अपने शास्त्र में इस योग का सांगोपांग वर्णन किया है। इस योग की दार्शनिक मीमांसा की पृष्ठभूमि में है महर्षि कपिल का सांख्य सिद्धान्त। शास्त्र की स्पष्ट उद्घोषणा है कि – **'नास्ति सांख्यसमं ज्ञानं नास्ति योग समं बलम्'** एवं **'सांख्य वै मोक्ष दर्शनम्'**।

□□□

प्रभु प्यारे से छेड़खानी का फल

– केशवदेव मालवीय, वाराणसी –

श्री सिद्धयोग परिवार से जुड़े श्री सद्गुरु के तेजांश बच्चे बलिया जनपद के श्री राजेश तिवारी के अपहरण एवं ब्रह्माण्ड नायक दादा गुरुदेव द्वारा उनकी वापसी की विलक्षण एवं अलौकिक घटना से अवश्य परिचित होंगे। श्री राजेश तिवारी का परिवार यद्यपि ब्राह्मण का है परन्तु इनके परिवार की आनशान बिल्कुल रघुवंशी क्षत्रियों जैसी है। इनके परिवार में श्री राजेश के ताऊ जी एवं श्री राजेश का छोटा भाई संजय कुमार तिवारी प्रमुख हैं। इसका अन्दाजा इसी से लगाया जा सकता है कि अपनी शराफत के कारण नहीं अपितु दबंगई के कारण श्री राजेश का छोटा भाई तीन चुनाव से ग्राम प्रधान था एवं पिछले प्रधानी के चुनाव में अपनी माता जी के कहने पर प्रत्याशी नहीं बना। परन्तु उनके गाँव का प्रधान वही बना जिसे श्री संजय तिवारी चाहते थे। पिछले अप्रैल महिने से वे दिल्ली शहर में जाकर पी. डब्लू. डी. में ठेकेदारी का कार्य कर रहे हैं। श्री संजय तिवारी का श्रीगुरुदेव जी से आन्तरिक लगाव है तथा वे उनकी कृपाओं एवं घटनाओं के प्रति सदैव आभार प्रकट किया करते हैं।

बलिया जनपद (उत्तर प्रदेश) के सुखपुरा कस्बे के पास इनका गाँव है। वे दिल्ली से चलकर 8 जून 2006 को अपने घर आये थे एवं 10 जून को सुखपुरा स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया में दिन के एक बजे भीषण डकैती पड़ी और करीब बारह लाख रुपया डकैत लेकर चले गये। उसी दिन श्री संजय तिवारी का बलिया से ट्रेन द्वारा दिल्ली का आरक्षण था एवं श्री संजय तिवारी उसी दिन दिल्ली को प्रस्थान कर गये। क्षत्रियों जैसा स्वभाव होने के कारण इनके दुश्मनों की संख्या भी काफी है एवं बैंक डकैती में इनका भी नाम लिखा दिया गया। 12 जून 2006 को इनके डेरे पर (बैठक पर) सी.ओ. की अगुवाई में छापा पड़ा। उस समय श्री रामजी तिवारी मकान की छत वाले कमरे में सो रहे थे तथा श्री राजेश तिवारी नीचे वाली कोठरी में चौकी पर बैठ कर रात के करीब साढ़े बारह बजे श्री दादा गुरुदेव जी का स्मरण कर रहे थे। श्री राजेश तिवारी को श्री दादा गुरुदेव ने वरदान दिया है कि जब तुम्हें आवश्यकता हो हमें याद करना, हम आ जाया करेंगे। अतः ये केवल उनके कृपाओं का स्मरण एवं चिन्तन एकान्त में बैठकर किया करते हैं। श्री दादा गुरुदेव जी को ये जब भी याद करके बुलाते हैं, अनाथनाथ चन्द सैकेण्ड में ही प्रकट हो जाया करते हैं। सी.ओ. सदर कोतवाली बलिया की पुलिस छापे वाली टीम में करीब पच्चीस लोग थे, जो एक जीप एवं ट्रक से आये थे। पुलिस वाले इनके डेरे पर छापा डालने पहुँचे एवं बाहर दीवारी के ऊपर से चढ़कर अहाते में प्रवेश कर गये। श्री राजेश तिवारी को इन सब बातों का अहसास नहीं था। और वे श्री दादा गुरुदेव जी के करुण कृपाओं का चिंतन करते हुए चादर ओढ़कर मस्ती में बैठे हुए थे। पुलिस का छापा दल जब बाहर दीवारी के ऊपर से कूद कर अन्दर अहाते में पहुँचा तो उसे सबसे पहले बैठे हुए श्री राजेश जी मिले। कमरे का दरवाजा खुला ही हुआ था। पुलिस के एक कर्मचारी ने इनके शरीर को बेंत की छड़ी से धकेला और कहा कि उठो। श्री राजेश जी ने अपना सिर नकारात्मक रूप से हिलाकर मना कर दिया। दूसरी बार फिर उसने छड़ी खोंसते हुए उठने का आदेश दिया, परन्तु श्री राजेश जी ने उठने से इंकार कर दिया। जब ये उसके द्वारा उठाने पर दोबारा भी नहीं उठे तो अपने स्वभाव से लाचार एक पुलिस सबइंस्पेक्टर ने बेंत से

जोदकर जगाने वाले सिपाही से कहा कि साले को बेत मार कर उठाओ। विवेकशून्य सिपाही ने श्री राजेश जी को बेत खोंस दिया। सिपाही द्वारा बेत से वार करने के बाद श्री राजेश जी ने अपने पूरे शरीर से चादर हटा दिया। चादर हटाने के बाद श्री राजेश जी ने कहा कि कहो क्या बात है? उसने कहा कि संजय (राजेश का छोटा भाई) कहाँ है? श्री राजेश जी ने उत्तर दिया कि दस तारीख में स्वतन्त्रता सेनानी एक्सप्रेस ट्रेन से उनका दिल्ली का रिजर्वेशन था, दिल्ली चले गये होंगे। उसने कहा कि सही–सही बताओ संजय कहाँ है? इस पर राजेश जी ने कहा कि हमें जो जानकारी थी हमने बता दिया, इससे ज्यादा जानकारी हमें नहीं है। पास ही खड़े एक पुलिस इंस्पेक्टर ने कहा कि यह कौन है? सिपाही ने उत्तर दिया श्रीमान्! यह संजय का बड़ा भाई राजेश है। तो उसने कहा कि इसी को कोतवाली ले चलो, जब इसकी पिटाई होगी तो सही बात बतलायेगा कि संजय कहाँ है?

पुलिस इंस्पेक्टर की बात सुनकर सिपाही ने कहा कि जीप में बैठो और कोतवाली चलो। सिपाही की बात सुनकर श्री राजेश जी ने कहा कि हमसे मत उलझो, हमारी पहुँच बहुत ऊपर तक है, परेशानी में पड़ जाओगे। श्री राजेश जी उस सिपाही से अपनी श्री दादा गुरुदेव जी तक की पहुँच का रहस्य समझा रहे थे। परन्तु पुलिस के कर्मचारियों एवं अधिकारियों को यह लग रहा था कि इसका सम्बन्ध किसी बड़े गिरोह से है। श्री राजेश जी की बात सुनकर वहाँ उपस्थित सी.ओ. ने कहा कि साला अपनी पहुँच समझा रहा है। ले चलो कोतवाली जब इसकी अच्छी प्रकार से धुलाई होगी तब इसको अपनी पहुँच का अन्दाजा लग जायेगा। उस सी.ओ. ने बड़ी ऊँची आवाज में गरज कर कहा कि चल बैठ हमारी जीप में। बाकी सब अपने विभागीय लोगों को ट्रक से कोतवाली चलने को कहा।

श्री राजेश जी सी.ओ. की जीप में पीछे बैठ गये। करीब सात आदमी सब मिलाकर ड्राइवर के साथ बैठे थे जीप में। सी.ओ. ने जीप चालक को जीप चलाने का आदेश दिया, जीप चालक जीप चलाने का प्रबन्ध करने लगा, बहुत प्रयत्न करने के बावजूद भी जीप चालू नहीं हो पायी, उस समय रात्रि का एक बज रहा था। जीप चालक ने सी.ओ. से निवेदन किया कि 'सर, जीप को जोर से धक्का दिलवा दीजिये, हो सकता है चालू हो जाय।' सी.ओ. ने आदेश दिया एवं ये सात लोग जीप में बैठे ही रहे एवं गाँव के करीब दस लोगों ने जीप को चालू करने की नीयत से जोर से धक्का देना शुरू किया। काफी समय तक प्रयत्न करने के बाद कुछ देर तक जीप के चारों पहिये घिसटते हुए चल रहे थे। लेकिन एकाएक जीप चालू होकर अनियन्त्रित हो गयी। स्टेयरिंग से ड्राइवर का नियन्त्रण शून्य हो गया। ऐसा समझ लिया जाय कि स्टेयरिंग चालक के कण्ट्रोल में नहीं रही। जीप तेजी से चलती हुई पुल पर चढ़ गयी एवं वहाँ से पुल के ढलान पर दूसरी ओर पहुँचकर कई फुट नीचे गड्ढे में गिर गयी। श्री राजेश जी को छोड़कर सबके शरीर का अंगभंग हो गया एवं उससे खून निकल रहा था। पुलिस के कर्मचारी और अधिकारी जीप से बाहर आ गये थे एवं राजेश जी से कहा कि जीप से बाहर आओ। श्री राजेश जी ने कहा कि हम जीप से बाहर नहीं निकलेंगे। हम या तो कोतवाली पर जीप से बाहर उतरेंगे या अपने घर पर जीप से बाहर निकलेंगे। सी.ओ. ने कहा कि जीप से बाहर निकलते हो या नहीं? श्री राजेश जी ने कहा कि 'हमने कह दिया है कि जीप से बाहर या तो हम अपने घर पर उतरेंगे या फिर कोतवाली पर उतरेंगे।' सी.ओ. ने कहा कि हम तुम्हें खींचकर जीप से बाहर फेंक देंगे। श्री राजेश जी ने कहा कि हमें जीप से बाहर फेंकने से पहले एक बार यह अवश्य समझ लेना कि यह तुम्हारे जीवन का अन्तिम कर्म होगा। श्री राजेश जी की यह बात सुनकर सी.ओ. सम्हल गया एवं उसकी हिम्मत नहीं

पड़ी। रात में ही उसने विभागीय क्रेन मंगा लिया एवं क्रेन से खींचकर जीप बाहर निकाली गयी। जीप जब गड्ढे से बाहर आ गई तो राजेश जीप में बैठे ही थे, तो उनके शरीर के किसी अंग पर खरोंच तक नहीं आयी थी। जीप बाहर आने के बाद जीप के पहले वाली सब सवारियाँ जीप में बैठ गयी एवं जीप का ड्राइवर जीप को चलाने का प्रबन्ध एवं प्रयत्न करने लगा परन्तु पुलिस जीप चालू नहीं हो सकी।

अन्त में ड्राइवर ने कहा कि हमें ऐसा लगता है कि इनके (श्री राजेश जी) जीप से उतर जाने के बाद जीप चालू हो जायेगी। श्री राजेश जी की बातों से सी.ओ. कोतवाली पहले ही सहम गया था, अतः अबकी बार उसने बड़ी नम्रता भरे शब्दों में राजेश जी से कहा कि अरे भाई ! हमारी जीप से उतर जाओ। हमसे गलती हो गयी, हमें कोतवाली जाने दो। श्री राजेश जी आध्यात्म विद्या के चक्रवर्ती सम्राट के प्रिय बालक हैं एवं अखिल ब्रह्माण्डनायक श्री दादा गुरुदेव ने उनसे बता दिया था कि पुलिस वालों ने तुम्हें परेशान किया है तो तुम भी उन्हें खूब परेशान कर लेना और यदि वे बहुत अनुनय विनय करने लगें तो उन्हें माफ कर देना। आज श्री राजेश जी ने उनकी आज्ञा के पालनार्थ कहा कि 'जीप से मैं दो ही शर्तों पर उतरूंगा। पहली शर्त यह है कि जीप से हमें हमारे घर छोड़िये या दूसरी शर्त यह है कि हमें कोतवाली ले चलिये।' बेचारा सी.ओ. हाथ जोड़कर निवेदन करता रहा, किन्तु राजेश टस से मस नहीं हुए। सी.ओ. आर्द्र भरे शब्दों में बोला – आपको आपके घर तब छोड़ा जाये जब जीप चालू हो सके। उसकी इन बातों को सुनकर राजेश जी ने कहा कि जीप का अगला वाला हिस्सा हमारे घर कीओर करके उसे स्टार्ट करो। सी.ओ. एवं पुलिस के सभी अधिकारी एवं कर्मचारी बेहद डरे हुए थे। उन्होंने जीप का अगला हिस्सा उनके घर की तरफ किया तथा ड्राइवर के बगल वाली सीट पर श्री राजेश जी को आदर और सम्मान पूर्वक बैठाया एवं स्वयं सी.ओ. जीप के पिछले वाले हिस्से में बैठ गये। इसके बाद सी.ओ. ने आदेश दिया और गाड़ी स्टार्ट होकर उनके घर की ओर चल दी।

श्री राजेश जी को पुलिस वालों ने अपने बहुत बड़े अधिकारी एवं शानशौकत के साथ उनके घर पहुँचाया एवं प्रणाम कर उन्हें नीचे उतरने का आग्रह किया। वे जीप से जब नीचे उतर गये तो बार-बार उन सभी ने अपने कृतकर्म के लिए क्षमायाचना की एवं कहा कि बाबा जी अब हमें कोतवाली जाने की आज्ञा दीजिये। पुलिस ने कोतवाली से चलकर साढ़े बारह बजे रात को इनके घर छापा मारा था एवं अपने द्वारा कृत कर्म के अपराध के कारण करीब दिन में बारह बजे उनसे क्षमायाचना कर कोतवाली पहुँचे। हमारे किसी गुरुभाई ने ठीक ही कहा है कि –

मेरे प्रभु जी हैं अलबेले ये तो करते दूर झमेले।
शिष्य के शिर पर बाँधे सेहरा अपने हाथ से ।।

□□□

पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा।
पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः।।

अर्थात् पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकार के विघ्नों का बीज है। पाप से रोग होता है, पाप से बुढ़ापा आता है और पाप से ही दैन्य, दुःख एवं भयंकर शोक की उत्पत्ति होती है।

कर्म और भोग

इन्दू शर्मा, गोहाना (हरयाणा)

इस देहधारी जीव के सम्बन्ध में प्रश्न यह होता है कि जब उसके पाप रूपी बीज से उत्पन्न हुए वृक्ष का भी वह शरीर छूट जाने के कारण जिससे उसने पाप किया था, अन्त हो गया, तो बिना वृक्ष के ही वह उसका फल कैसे पायेगा ? उत्तर सहज है।

जैसे एक बीज के दो भाग होते है। एक तो संस्कार जो जड़ के समान भूमि में चला जाता है और अदृष्ट अर्थात् दिखाई न देने वाला है। दूसरा वह भाग जो भूमि के ऊपर रहता है और बढ़ता है। वह दृष्ट है अर्थात् दिखाई देने वाला है, या यह समझो कि उसी समय का भोग है। अब संस्कार रूप में जो भाग अदृष्ट है, उससे ही प्रेरित होकर मनुष्य नया कर्म करता है और उसके फल को भोगता है। और सुनो, संसार में भी ऐसे वृक्ष और औषधियाँ अनेक देखने में आती हैं जो बार–बार काट देने पर भी उनकी जड़ गुप्त रूप से पृथ्वी में विद्यमान रहती है और समय पर अनुकूल अवस्था पाकर स्वयमेव फिर फूट पड़ती है, और बढ़कर फल--फूल ले आती है। इसी प्रकार पिछले जन्म का बीज भी गुप्त रूप से मन की भूमि में पड़ा रहता है और यथासमय वृक्ष बनकर प्रत्यक्ष फल देता है। देखो ! बनो–उपवनो में अनेक वृक्ष व औषधिया किसी मनुष्य के लगाये बिना ही उत्पन्न हो जाया करती हैं। उसका कारण भी यही होता है कि बीज तो वहाँ पहले से ही मिट्टी में दबा रहता है, उगने की ऋतु आते ही प्रकृति से सामान्य अनुकूल साधन पाकर वह शीघ्र ही अंकुर ले आता है। घास को नहीं देखा! काट लेते है, उखाड़ लेते हैं परन्तु उसकी जड़ पृथ्वी में रह जाती है और प्रायः पचास–पचास फुट तक धरती में गहरी चली जाती है। जब पानी पड़ता है, ऋतु और अनुकूल काल होता है, तो वह जड़ फिर आ जाती है और सूखे मैदान को हरा–भरा कर देती है।

अब आप कह सकते है कि इस जन्म में मैं जो फल मिल रहा है वह पहले जन्म के कर्मों का है। अतएव जब वह हमारे प्रारब्ध में ही लिखा है तो बचेगा कैसे? तुमने सुना होगा कि सूली का काँटा हो जाता है। परन्तु कब? जब प्रभु की दया हो। इसका आशय यही है। देखो ! कर्म के तीन विभाग हैं – (1) करनी (2) करमगति और (3) पूर्वले लेख। जिन्हें शास्त्रोक्त परिभाषा में शास्त्रकार क्रियमान, संचित व प्रारब्ध के नामों से पुकारते है।

अब 'क्रियमान' कर्म तो वह है जो हम इस वर्तमान जन्म में कर रहे है, चाहे वे अच्छे हों या बुरे। परन्तु 'संचित' और 'प्रारब्ध' हमारे पूर्व जन्म के कर्मों के प्रभाव से होते हैं। इसमें प्रारब्ध तो उसको कहते हैं जिसका भोग हमें इस जन्म में मिल रहा है और शेष 'संचित' कर्म वह है जो हमारे इकट्ठे किये हुए है और एक धरोहर के रूप में संग्रहीत पड़े हैं।

हमारे पूज्य ऋषिमुनियों ने कर्म भी तीन प्रकार के बतलाये है। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है 'कार्यमान' अर्थात् वर्तमान कर्म तो इन्हें सुधार लेने या देने के समान समझो। इनके चुकाने अथवा

वसूल करने की अवधि वर्तमान जन्म में मरण तक नियत है। चाहे कोई दुश्कर्म करके उसके दुष्प्रभाव से किसी प्रायश्चित द्वारा निवृत्ति पा ले, चाहे मरने के अनन्तर अपने जन्म के लिए अपने लेखे लिखवाये चाहे उसकी ओर से निश्चिन्त रहकर उसका कुछ भी प्रतिकार न करे, अथवा कोई भला कर्म करके उसका फल इसी जन्म में पा ले, और भगवान पर कुछ भी उधार न छोड़े या उस फल को भोगने की इच्छा ही न करे और प्रभु को अर्पण कर दें और उसके फल भोग से किंचित मात्र भी सम्बन्ध न रखें, या अब इस जन्म में उसका फल न भोग कर आगामी जन्म के लिए उसे अपना भाग्य बना ले। जब तक शरीर है तब तक उसके लिए भोग अनिवार्य है।

इसका उत्तर यह समझो कि यह जन्म–मरण भी दो प्रकार का है। एक 'श्वासगत' और दूसरा 'शरीरगत'। श्वासगत तो जीवन धारण करने के लिए है और शरीरगत भोग के लिए अर्थात् कभी शरीर तो पहले समाप्त हो जाता है और केवल श्वास ही केवल जीवनाधार बने रहते हैं। जब कर्मों का फल आयु और भोग है तो जो मनुष्य अपने भोग को शीघ्र समाप्त कर लेता है और अपने अन्तिम समय का विचार नहीं करता इसमें सर्वथा उसी का दोष है, भगवान का नहीं, या यों समझो, एक पिता के चार पुत्र थे और एक लाख रुपये की सम्पत्ति। उसने 25–25 हजार की सम्पत्ति बाँट दी और अपने पास कुछ भी नहीं रखा। एक पुत्र तो रुपया मिलते ही गुलछर्रे उड़ाने लगा और साल दो साल में ही सब चट कर गया। दूसरे ने अपना रुपया बैंक में डाल दिया। तीसरा व्यापार करने लगा और चौथे ने खेती प्रारम्भ कर दी और धरती लेकर गेहूँ बो दिया। मौज बहार उड़ाने वाला तो दो दिन में कंगाल हो गया और उसके पास कौड़ी भी नहीं रही। अब उसे साहूकार अथवा सम्पत्तिशाली कौन कहे? या उधार कौन कैसे दे? जब साख की कोई वस्तु ही उसके पास नहीं।

इसी प्रकार मनुष्य अपने नियत भोग को तो अवश्य पाता है परन्तु उसकी अवधि को घटाया अथवा बढ़ाया जा सकता है। यह उसके अपने हाथ में है।

■ ■ ■

भौतिक भोग के इस युग में योग का अवलम्बन ही करेगा आपका कल्याण
उत्तम और सफल जीवन की एकमात्र विश्वसनीय कुंजी है योग !

योग-पथ पर बढ़ने हेतु सिद्धयोग की शरण लीजिए

सिद्धयोग

पढ़िये-
पढ़ाइये !

योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक-पत्र

सद्गुरु कृपा से साधना व अमरता की ओर

कु. रचना शर्मा, गंगापुर सिटी

मनुष्य का जीवन एक अज्ञात प्रवाह में बहता जा रहा है। उसे यह होश नहीं है कि वह किधर बह रहा है, उसके सामने भविष्य की आशा है। यही आशा की बेहोशी उसे प्रवाहित करती जा रही है। उसे लगता है कि जो मुझे प्राप्त है, वह अधूरा है और जो मुझे भविष्य में मिलेगा उससे मैं तृप्त होऊँगा।

जिस नीरस वातावरण को ढो रहा हूँ, यदि वह परिस्थिति बदल जाये तो मैं आनन्दित हो जाऊँगा। मगर हम यह नहीं जानते कि परिस्थितियों का आश्रय लेने वाला व्यक्ति कभी सुखी नहीं रह सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि अनुकूल परिस्थिति आने पर सुख की सुगंध उसे मिल सकती है। मगर उस सुख की सुगन्ध में कहीं दुःख का काँटा अवश्य लगेगा।

मनुष्य जब इस सांसारिक लपटों से अत्यंत दुःखित हो उठता है तो वह आनन्द की तलाश में ईश्वर की ओर भागता है, क्योंकि प्रत्येक जीव उस परमपिता का ही अंश है और अंश का अपने अंशी की तरफ आकृष्ट होना स्वाभाविक है। सांसारिक दुःखों से मुक्ति पाने के लिए साधना की ओर प्रवृत्त होता है। मगर साधना क्या है? साधना का वास्तविक स्वरूप क्या है? यह तो हम जैसे मूढ़ लोग जानते ही नहीं। मगर जब सद्गुरु की शरणागति हमें प्राप्त होती है, उनकी करुणाकृपा से हम साधना के मार्ग में प्रवृत्त होते हैं, तब हमें कुछ-कुछ ज्ञान होता है कि वास्तव में साधना क्या है? साधना का मार्ग तलवार की धार पर चलने के समान अत्यंत जटिल है। गुरुदेव जब शिष्य को साधना के मार्ग में प्रवृत्त करते हैं तब उनका जो सम्बन्ध है उसे हम कुम्हार और घड़े के माध्यम से व्यक्त कर सकते हैं। कुम्हार जब घड़ा निर्मित करता है तब सबसे पहले मिट्टी को पैरों तले रौंदता है। मिट्टी जुबान नहीं हिलाती कि मुझे क्यों रौंद रहे हो? गुरुदेव शिष्य पर भी इसी प्रकार चोट करते हैं। ऊपर से सुन्दर आकार देने के लिए जिस प्रकार घड़े को ठोक दिया जाता है, ठीक उसी प्रकार गुरुदेव भी शिष्य पर साधना रूपी चोट करते हैं। अन्दर से अपनत्व का सहारा दिये रहते हैं। दिखाई तो बाहर का हाथ पड़ता है, जो ठोक देता है और जो अपनत्व का हाथ सहारा देता है वह दिखाई नहीं पड़ता।

घड़े को कुम्हार धूप में सुखाते हैं, संयम की धूप में साधक सूखता है जो उसमें लिप्सा का अवरोध है वह सूखने लगता है। फिर घड़े को आग में तपाया जाता है। ध्यान की आग में साधक को उतारा जाता है। साधक चाहता है कि मंदिर की घण्टी बजाते रहें, भगवान के फूल-पत्तियां चढ़ाते रहें, ध्यान की आग से न गुजरना पड़े। क्योंकि आँख बन्द करने से घबराहट होती है, ऊब होती है। अन्दर से विचारों के पर्त उघड़ते हैं, जो कूड़ा-करकट अंदर भरा है संकल्प विकल्पों के रूप में सामने आने लगता है। अपना असली चेहरा अन्तस के दर्पण में दिखाई पड़ता है, बाहरी शरीर की सुन्दरता तो हमने बना ली मगर अन्दर से आ रही दुर्गंध को कौन ध्यान में उतारना चाहेगा? साधक बैठकर प्रवचन सुन लेंगे, संकीर्तन में ताली बजायेंगे, मगर ध्यान की लपट से घबरायेंगे। मगर जिनमें घड़े की तरह आग में तपने का साहस है वह गुरुदेव के समक्ष समर्पित हो जाते हैं। ध्यान की आग में निरन्तर तपने

पर ही हमारा वास्तविक स्वरूप उभरकर सामने आता है। अन्दर जो लावा भरा हुआ है, वह ध्यान की अग्नि का स्पर्श करते ही बाहर निकलने लगता है।

सद्गुरुदेव अपने मन्त्र रूपी डंडे से निरन्तर प्रहार करते हैं, अज्ञान रूपी गहरी निद्रा के आगोश से जगाते हैं। साधना के मार्ग पर निरन्तर अग्रसर होना यह साबित करता है कि हमने नींद से करवट ली है। साधना से जीवन में स्थिरता आ जाती है। साधक तटस्थ होकर सबकुछ सहन करता है, मगर हृदय में हलचल मची है। प्रतीक्षा रूपी सहज आनन्द उसके जीवन में समाविष्ट हो जाता है। प्रतीक्षा में सिर्फ प्यास रहती है, पुकार नहीं, होंठ भी नहीं हिलते। कहीं–कहीं मेरे होंठ से कोई आवाज न निकल जाये मगर हृदय में बरबस आपका ही स्मरण, चिन्तन बना रहता है, आँखों से अश्रुधार बहती रहती है। भक्त तो प्रभु के द्वार पर दस्तक भी नहीं देता, क्योंकि उसके अन्तर में तो विरह रूपी सहज आनन्द प्रतीक्षा के रूप में समाया है। हम प्रतीक्षारत हैं, प्यासे हैं मगर आप अपनी इच्छानुसार मिलना। मेरी प्यास ही दस्तक बन जाये, मेरी दशा पुकार बन जाये, मैं कुछ नहीं कहूँगा। प्रभु! मैं प्रतीक्षा का ताप सहूँगा। मगर उफ तक नहीं करूँगा।

हम तो आपको नहीं देख पा रहे मगर आप तो हमें देख रहे हैं, हमारे सामने अभी भी पर्दा पड़ा है। आप तो हमारी स्थिति को भली–भाँति जानते हैं, अब तो हमारी कमजोरी ही आपका नियन्त्रण बनेगी। प्रभु तो साधक के मन की भावदशा समझते हैं। भक्त कुछ कहते नहीं, माँगते नहीं केवल धैर्य से प्रतीक्षा करते हैं। प्रभु प्रेम पथ अद्भुत है। शीघ्र पहुँचने की लालसा अवश्य देर करती है। शीघ्रता करने से चित्त अशांत हो जाता है। तनाव की तरंगों से भर जाता है। स्थिरता खो जाती है। शक्ति बहिर्मुखी हो जाती है। व्यक्ति शीघ्र असमर्थ हो जाता है।

प्रभु के मन्दिर में प्रतीक्षा की बहुत धीमी वीणा बजती है, जहाँ शब्द का उच्चारण भी कठोर बन जाता है। प्रतीक्षा का संगीत अनूठा है, जिसमें प्यास की प्रबलता और मौन की स्वर लहरी है। साधना का स्वाद बड़ा अनूठा है जिसमें भक्त और भगवान दोनों प्रेम से सराबोर रहते हैं। सद्गुरु कृपा से ही साधक भावजगत में प्रवेश करता है, क्योंकि गुरुदेव तो परम दयालु हैं। उनकी माया अपरम्पार है जिसे कोई भी साधारण मनुष्य नहीं समझ पाया, क्योंकि उनकी अलौकिकता को जानने के लिए हमें अन्तर्चक्षुओं को खोलना पड़ता है। परम दयालु गुरुदेव अपने शिष्य को भांति–भांति की लीलायें करके उस मायावी संसार के मोहजाल से छुड़ाते हैं, क्योंकि वे हमें इस मायावी दुनिया से निकालकर अपने धाम परमलोक में ले जाना चाहते हैं, जहाँ परमसुख है – परम आनन्द है।

□□□

शोक संवेदना

भाई रमेशचन्द्र कुशवाह (इन्दौर) की सुपुत्री श्रीमती वन्दना का 25 अक्तूबर को देहावसान हो गया। जयपुर में उनकी ससुराल थी। श्री प्रभुजी से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को सद्गति प्रदान करें और दुःखी माता–पिता व ससुराल के परिजनों को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें। सिद्धयोग परिवार अपनी हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

– सम्पादक

गुरुदीक्षा के बाद मेरे अनुभव

महावीर सिंह चौहान, आगरा

मैंने संसारी व्यक्तियों से यह सुन रखा था कि जब तक गुरु नहीं बनाया जाता तब तक जो दान पुण्य किया जाता है उसका लाभ नहीं मिलता। इस लालच से मैं शीघ्र से शीघ्र गुरु बनाकर यह कार्य करना चाहता था। अतः अपने नियुक्ति के स्थान विकासखण्ड नवाबगंज जिला फर्रुखाबाद में आने वाले महात्माओं से उस कार्य की बात करने की कई बार इच्छा की। लेकिन मेरी धर्मपत्नी श्रीमती शान्तीदेवी ने मुझे यह कहकर हर बार रोका कि अपनी सभी बहिनें विशेष रूप से श्रीमती जयदेवी तथा श्रीमती राजादेवी के सवाई (एत्मादपुर) में एक महान सिद्ध महात्मा गुरु हैं, उन्हें आप भी अपना गुरु बनाइये और हम सबका जीवन सफल बनाये।

उनकी बात मैंने मानी और शीघ्र ही आने वाली प्रभु नवमी के उत्सव में सम्मिलित होने के लिए चल दिया। उपरोक्त तिथि को मैंने दीक्षा ली। मैं उसी दिन से अपने को भाग्यशाली और उन्नत पथ पर बढ़ता हुआ समझने लगा। जब मैं इस उत्सव से लौट रहा था तो चपरासी, जीपचालक रेलवे स्टेशन शमसाबाद पर मुझे बहुत ही आश्चर्य की दृष्टि से देख रहे थे। वजह यह थी कि मैं भी अपने को एक सन्यासी जैसा अनुभव कर रहा था। पैर में जूता नहीं था, जो आश्रम में ही कहीं भीड़ में खो गये थे और मैं ट्रेन के छूटने के डर से शीघ्र चला आया था। दूसरे बगल में दीक्षा वाला आसन, हल्का गर्मियों का बिस्तर तथा धोती पहने हुए था। मैं इसी भेष में अपने निवास स्थान पर पहुँच गया और बगैर किसी उलझन के कार्य चलने लगे तथा मैं अपने को बहुत हल्का सा अनुभव करने लगा। प्रमुख जी की उलझनें, स्टाफ की उलझनें सभी आसानी से पार करता हुआ मैंने 3 वर्ष इस ब्लाक में व्यतीत किये। तीन वर्ष की बंदिश के कारण मेरा स्थानान्तरण कानपुर जिले में बिधूना विकास में हो गया। मैंने गुरुदेव का आशीर्वाद समझा, क्योंकि कोई भी पिछला झंझट विकास खण्ड नवाबगंज का लम्बित नहीं छोड़ा और स्टाफ, जनता ने मुझे बड़े स्नेहपूर्ण तथा अश्रुपूर्ण विदाई देकर कार्यभार से मुक्त किया।

बिधूना विकास खण्ड में मैं केवल एक वर्ष रहा, क्योंकि वह खण्ड कमी में समाप्त हो गया था। इस विकास के प्रमुख ने मुझे बहुत आदर एवं स्नेह दिया और अपने निकट के विकास खण्ड पतारा (कानपुर) में ही नियुक्त करा लिया क्योंकि यह प्रमुख श्री वीरेन्द्र बहादुर सिंह चन्देल जिले में बहुत ही इज्जतदार तथा विधानसभा में एम.एल.सी. थे। इस विकास खण्ड में मैं 3 वर्ष रहा और इनके साथ ही मुझे दो विकास खण्ड बिधूना, भीतरगाँव (दोनों समाप्त विकास खण्डों) का चार्ज भी पूरा होने तक का दे दिया। अतः तीन विकास खण्डों का लगभग छः सौ का स्टाफ हो गया और इन सभी का वेतन वितरण, प्रशासनिक कार्य सम्हालते हुए अधिक भारस्सहन करना पड़ा। इन सभी झंझटों को सम्हालते हुए मैंने अपना स्थानान्तरण इसी विभाग के प्रशिक्षण केन्द्र पर, जहाँ इसी विभाग के कर्मचारियों तथा कृषकों का भी प्रशिक्षण होता है, कराना उचित समझा और मुझे अपने घर के नजदीकी प्रशिक्षण केन्द्र

जिला मैनपुरी के प्रशिक्षण केन्द्र पर कर दिया।

उपरोक्त विकास खण्ड पत्तारा में मेरे साथ एक घटना घटी। मैं सायंकाल को रोजाना अकेले ही टहलने जाता था। एक दिन एक शराबी मुझे रास्ते में मिल गया। मैंने प्रभु स्मरण किया और प्रार्थना की कि मुझे इससे छुड़ाइये। क्योंकि वह कुछ गलत बातें कर रहा था। मुझे अभी एक कि.मी. और जाना था। कुछ ही चलने पर मुझे अनुभव हुआ कि प्रभु रामलाल (अपने दादा गुरु) मेरे सिर पर बैठे हैं और मैं अपने को निर्भय समझने लगा तथा वह शराबी भी दस कदम चलकर लौट गया।

इस प्रकार उपरोक्त विकास खण्डों से मुझे मुक्ति, मनचाही जगह नियुक्ति एवं सभी कार्य जो मेरी शक्ति से बाहर थे सम्पन्न हुए वह सब उन्हीं महान गुरुदेव जी तथा प्रभुजी की कृपा से ही सम्पन्न हुए। प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र मैनपुरी की सजावट, शुद्ध वातावरण, वहीं का आवास आदि प्रयोग कर मैं अपने आपको बहुत सौभाग्यशाली समझता रहा और वहाँ 6 वर्ष तक बहुत सम्मान के साथ रहा। इसके बाद मुझे चकेवर (जिला इटावा) जनपद में स्थानान्तरित किया गया और यहाँ भी मैंने उपरोक्त प्रशिक्षण केन्द्र जैसी सुविधायें प्राप्त करते हुए 3 वर्ष व्यतीत किये तथा वहाँ मेरी प्रोन्नति द्वितीय श्रेणी के अधिकारी (राजपत्रित पद) जिला भूमि संरक्षण अधिकारी के पद पर कर दिया। मैं यहाँ मैनपुरी जनपद में पुनः कार्यभार संभालते हुए 3 वर्ष कार्य किया। शुरुआत होने के कारण सभी का सहयोग ठीक ढंग से मुझे मिला। मैनपुरी से मेरा स्थानान्तरण भू.स.अ. के पद पर जनपद अलीगढ़ में अतरौली खण्ड में हुआ। यह पुरानी यूनिट थी। अतः कार्यकर्ता, आफिस आदि सभी बुरी प्रवृत्तियों से ग्रसित थे और उनको मोड़ देना मेरे लिए बहुत कठिन कार्य था। क्योंकि मैं एक ईमानदार एवं सीधे रास्ते चलने वाला व्यक्ति था। अतः अधिकारी तथा आफिस के कार्यकर्ता और फील्ड के कर्मचारियों में जहाँ 1:50:90 का अनुपात हो वहाँ क्या स्थिति होगी? अतः मेरी कनपटी पर एक दिन गोली रखकर कार्य कराने की नौबत आ गयी। लेकिन मैंने मजबूती व साहस से कार्य लिया और बदमाश भाग गया। वह प्रधान लिपिक से उलझ गया और वह छत पर चढ़ बाहर कूद गये और लगभग 20 दिन में ठीक हुए जबकि मेरा कुछ नहीं बिगड़ा। बदमाश इतना जबरदस्त था कि अधिकारी भी मेरा साथ नहीं दे सके। ऐसी परिस्थितियों में मैंने सीधे ही आयुक्त मण्डल को पत्र टाइप कराके भिजवाया और मेरा स्थानान्तरण उन्होंने अपने ही मण्डल की यूनिट फतेहपुर जिला पर एक सप्ताह में ही कर दिया। यही स्थान रिक्त था। लेकिन इस यूनिट के भी बहुत पुरानी होने के कारण गत अतरौली इकाई से भी हाल खराब था। यहाँ आकर भी मुझे दो यूनिट का कार्य मिला और दोनों ही बहुत बिगड़ी हुई यूनिटें थीं। क्योंकि इस विभाग में गलत पैसे का बोलबाला था और पैसे के बल पर अधिकारी अच्छी इकाइयों में नियुक्ति करा लेते थे। रद्दी स्थान ईमानदार और वेतन पर जीने वाले अधिकारियों के लिए छोड़ दिये जाते थे। अतः यहाँ भी उच्च अधिकारी अपने निवास स्थान पर ही कार्य करते थे। आफिस में बैठने का साहस कम करते थे। परिणाम हुआ कि मेरे प्रभुजी एवं सद्गुरुदेव भगवान के सामने रुदन करके प्रार्थना करनी पड़ी कि कृपया मुझे इस नारकीय स्थिति से उबारने की कृपा कीजिये और उनके वरदहस्त ने मुझे तुरंत ही मैडीकल अवकाश एवं स्थानांतरण कराने का साहस प्रदान किया और अगले दिन मैंने अवकाश तथा स्थानान्तरण हेतु प्रार्थना-पत्र दे दिया। ट्रांसफर हेतु उस समय क्योंकि मैंने पैसा खर्च नहीं किया अतः 4 वर्ष बाद सफलता मिली जबकि वह भी ऐसी जगह जहाँ केवल ईमानदार

अफसर ही जाना पसंद करते थे।

यह कृषि विभाग के लिए एक नई जगह थी, जहाँ जीप लेकर केवल प्रचार ही कृषि विभाग का कार्य था और अन्य साधन कम थे। मेरे यहाँ निवृत होने के लगभग दो वर्ष शेष रह गये थे। अतः अपनी पूर्ण सेवा के कागजात तैयार कराना और शान्ति से विभाग का कार्य करना–कराना ही मुख्य कार्य रहा। उपनिदेशक भी बहुत अच्छे स्वभाव तथा पूर्ण सहयोग देने वाले मिले (श्री एस.के. सिंह) और उन्होंने मेरे सभी कार्य अंत तक आसानी से करा दिये।

अतः यहाँ अपना लगभग दो वर्ष का समय व्यतीत करता हुआ दिनांक 31 जुलाई 1989 को सेवा निवृत होकर और भावभीनी विदाई लेकर तथा सेवाकाल की सभी वांछित राशियाँ प्राप्त तथा पेंशन भी 4 अगस्त 1989 को स्वीकृत कराके आगरा में निवास हेतु तैयारी करने लगा। मेरा परिवार नियुक्ति स्थान मोहम्मदी (जिला लखीमपुर खीरी) पर ही जून 1990 तक रहा क्योंकि बच्चे को हाईस्कूल की परीक्षा देनी थी और मुझे उनके निवास हेतु स्थान का निर्माण करना था। आगरा आते समय वहाँ हिन्दू मुस्लिम झगड़े के कारण कर्फ्यू लगा हुआ था, अतः मेरे आने में 3–4 दिन का विलम्ब हुआ। जब मेरा ट्रक चला तो मैनपुरी में मेरे गुरुभाई तथा भानेज दामाद मिले तो उन्होंने बताया कि श्रद्धेय गुरुदेव ने अपना शरीर छोड़ दिया है। मेरी अश्रुधारा बहने लगी और काफी समय के बाद होश आया, क्योंकि मैंने ट्रक वाले को सथाई धाम तक परिवार को ट्रक सहित लाने का विचार बना लिया था, क्योंकि वहीं से दशहरी आम छांट–छांट कर लाया था। इस तरह जो वेदना मुझे हुई उसको व्यक्त करना मेरी लेखनी से बाहर है। इन सभी भीषण परिस्थितियों में मैं अपने नवनिर्मित मकान पर उतर गया।

समय बड़े उत्साह से व्यतीत होता चला गया और अनेकों अरमानों के बीच मेरी श्रीमती जी ने लगभग 10 वर्ष बाद 8 अप्रैल 2000 को अपना शरीर छोड़ मुझे तथा गुरुदेव प्रदत्त बच्चे को जिसकी आयु 25 वर्ष की थी सिर्फ दो प्राणियों को ही अकेला छोड़ दिया। जो शेष बाधायें–समस्यायें शेष रह गयीं उनका भी सामना करने का वक्त आ गया और क्या–क्या कठिनाइयाँ मुझे झेलनी पड़ीं यह लेखनी की शक्ति से बाहर है।

प्रभुजी के मार्गदर्शन अथवा संकेत पर सुपुत्र की शादी भी स्थानीय लड़की के साथ 5 मई 2001 को हो गयी। लेकिन गृहस्थी का कार्य सभी मेरी बड़ी सुपुत्री को ही सम्हालना पड़ा, जिसे अरथंगा का मर्ज रहा (अब ठीक है)। उसने बड़ी कठिनाई एवं हम लोगों के सहयोग से कार्य सम्हाला, अब भी सम्हाल रही है। क्योंकि मेरे पुत्र विजेन्द्र कुमार की पत्नी अपने अस्वस्थ माँ–बाप की देखरेख के लिए अधिकांशतः अपने मायके में ही रहने के लिए विवश है। यही कारण है कि अपनी 3 वर्षीय पौत्री की मधुर मुस्कान और किलकारियों का आनन्द हमें कम नसीब हो पाता है। इस तरह मैंने अपने जीवन का पूर्ण वर्णन प्रस्तुत किया और अब यह प्रस्तुत करना चाहता हूँ कि पूरे जीवन को मेरे जीवनाधार, कर्णधार ने मेरी नाव को किन कठिनाइयों में कृपा करते हुए कैसे आसान बनाया, कैसी भयंकर परिस्थितियों को आसान बनाकर निर्वहन करने का अवसर दिया है। मैं विशेष रूप से उन सभी का वर्णन यहाँ कर रहा हूँ जिनमें बगैर गुरु कृपा के उस परीक्षा को पार करना अत्यन्त दुर्गम था :-

1 पतारा के शराबी से मुक्ति दिलाना।

2. पतारा, विधूना, बामपुर विकास खण्डों के कार्यों की चरम सीमा से अधिक अधिकता होना और मनचाही जगह पर बगैर रिश्वत के स्थानान्तरण जहाँ वह स्थान, वातावरण परास्नातक ग्रेजुएट को मिलता है, मैं केवल कृषि स्नातक था और मुझे ऐसी शक्ति देना कि कार्यकर्ताओं कृषकों द्वारा मेरी ही मांग करना कि उन्हें प्रशिक्षण हेतु ही बुलाया जाये। मेरे साथी जो पोस्ट ग्रेजुएट थे उन्हें नहीं।

3. मैनपुरी प्रशिक्षण केन्द्र पर ही मेरे निवास पर आगमन। जब पत्नी की सहेलियों ने यह कहा कि इनके तीन सुपुत्री हैं, पुत्र कोई नहीं। तब यह उत्तर देना कि लड़का तो दे दिया है। यह लड़का श्री बजेन्द्र कुमार जो मेरा दत्तक पुत्र है, मेरी बड़ी लड़की का पुत्र है। जिसकी शादी मैंने मैनपुरी प्र.प्र. केन्द्र पर ही 1974 में की थी और उसके अप्रैल 1975 में यह उत्पन्न हुआ और पैदा होने के दिन से कभी भी अपने गाँव बरौला (अलीगढ़) में लड़की के साथ नहीं गया। वह हम सबने ही पाला–पोसा।

4. बकेवर में मेरी उन्नति भी अनायास ही हुई। हमारे प्रशिक्षण केन्द्र के प्राचार्य ने रिमार्क दिया कि मैंने तो अब तक प्रोन्नति कराने वालों को अधिकारियों के पास दौड़ते देखा, लेकिन आपके पास स्वयं प्रोन्नति करने वाला आया है। क्योंकि लखनऊ निदेशालय कृषि से एक वरिष्ठ लिपिक मेरी फाइल पूरी कराने लाये थे।

5. मेरी सेवा निवृत्ति के बाद पेंशन भी केवल 4 दिन बाद ही स्वीकृत होना एक ऐसी घटना है कि लोगों ने यही रिमार्क दिया कि इतनी जल्दी तो पेंशन आज तक स्वयं निदेशक की भी नहीं हुई।

6. गुरुदेव की व्यापकता की एक घटना भी मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। एक बार मैं रामनवमी के उत्सव पर आगरा मीटिंग में जा रहा था। श्रीमतीजी तथा मेरी सुपुत्री मंजू उनके साथ थी। मैंने अपनी पत्नी से कहा कि तुमको मैं एत्मादपुर जीप से उतारता हुआ आगरा बैठक में चला जाऊँगा और लौटते में शाम को श्रद्धेय गुरुदेव की शरण में आ जाऊँगा। तुम गुरुदेव जी से मिल लेना और रहने की व्यवस्था कर लेना। श्रीमती जी कहने लगी कि वे मुझे जानते तो हैं नहीं। किन्तु जब वे आश्रम पर पहुँची तो गुरुदेव ने स्वतः ही कहा "शान्ति! महावीर नहीं आया?" वह दंग रह गयी कि वे तो मेरा नाम भी जानते हैं। यह है उनके ब्रह्माण्ड के कण–कण में व्यापक होने का उदाहरण।

7. आगरे में आने पर निवास हेतु दो दिन के अन्दर ही निवास हेतु प्लाट मिलना और 6 माह के अंदर रहने योग्य आवास बनाकर देना एक अद्वितीय घटना है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि मेरा पूर्ण जीवन बहुत ही कष्टमय रहा और उन परिस्थितियों में मेरा जब से सद्गुरुब्रह्म ने हाथ पकड़ा मेरी नाव ऐसे चलने लगी जैसे गंगा नदी में एक छोटी सी नाव बरसात में ऐसे बह रही हो जैसे उसे उस तिनके का पता भी न हो कि वह कहाँ है? मुझे दीक्षा के बाद किसी बात की ऐसी चिंता नहीं रही कि मैंने कार्य सोचा वह किसी भीषण परेशानी के बाद पूरा हुआ हो। उस दिन से मुझे किसी का अभाव प्रतीत नहीं हुआ और सदैव संतोष रहा। मैं दीक्षा के बाद से लगभग सभी उत्सवों में जाता रहा और अब भी जा रहा हूँ। जब गुरुदेव जी बहिन उमा जी के साथ बैठते थे तो मेरा यही परिचय देते कि "यह महावीर है।"

अन्त में मेरी उन्हीं कर्णधार से प्रार्थना है कि मेरा अन्तिम दिवस भी विशेष दया के साथ हँसते हुए उनके चरण कमलों में समा जावे। ऐसा ही मुझे पूर्ण विश्वास है। उनके श्रीचरणों में मेरा कोटि–कोटि प्रणाम।

□□□

आधुनिक शिक्षा और सदाचार

प्रस्तोता : अशोक दिग्विजय

पाश्चात्यों के आगमन एवं संसर्ग से पवित्र भारतीय शिक्षा पद्धति में सहसा परिवर्तन हुआ। शिक्षण–संस्थाएँ शनैः शनैः आचार दृष्ट्या बिगड़ने लगीं। अब आये दिन जो इनमें अमर्यादित अवाञ्छनीय घटनाएँ घटने लगी हैं, उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा है कि आज 'शिक्षा और सदाचार' तथा 'विद्या और विनय' में कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है। शिक्षा के मौलिक उद्देश्यस्तम्भ–'विद्या ददाति विनयम्', 'सा विद्या या विमुक्तये', 'अमृतं तु विद्या'–आज ढह रहे हैं और विनय के स्थान पर उद्दण्डता, मुक्ति के स्थान पर स्वार्थों की गुलामी प्रबल होती जा रही है और विद्या विषवल्ली हो रही है। पहले भारत में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश के समान वन्दनीय माना गया था–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।

(गर्गसंहिता ४।१।१४)

पर आज की स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। इस समस्या के निदान–हेतु एक ओर तो शिक्षा के मूल्यों, आदर्शों और उपलब्धियों पर नवीन रूप से विचार करना होगा और दूसरी ओर शिक्षा–प्रणालियों, पाठ्यक्रमों तथा शिक्षकों के चयन और उनकी भूमिका पर ध्यान देना होगा। ऐसे समय में हमारा ध्यान रस्किन (Ruskin) की उस उक्ति की ओर जाता है, जिसे उन्होंने शिक्षा के उद्देश्य का पुनर्मूल्यांकन करते हुए कहा था। उनका कथन है– शिक्षा का उद्देश्य यह नहीं कि लोगों को वह सिखाया जाय, जिसे वे नहीं जानते, वरन यह कि उन्हें ऐसा आचरण करने की शिक्षा दी जाय, जैसा वे नहीं करते। जिस तथ्य की ओर शिक्षाविद् रस्किन ने १९वीं शताब्दी में संकेत किया, उसका हमारे स्मृतिकारों ने बहुत पहले ही उल्लेख किया था–

"**शौचाचारांश्च शिक्षयेत्**"। (याज्ञ० १।१५)

शिक्षा की दिशा मोड़ने एवं मनुष्य के विकास को एकांकी बनाने में विज्ञान के नवीनतम अन्वेषणों ने भी योग दिया है। व्यक्ति अधिकाधिक तर्कशील एवं बौद्धिक बनता जा रहा है और उसमें भ्रातृभावना, सहानुभूति, पारस्परिक सहयोग और सद्भावनाओं का लोप होता जा रहा है। अकेले डार्विन महोदय के वैज्ञानिक तथ्यों ने–प्राकृतिक चयन, जीवन के लिये संघर्ष और श्रेष्ठ का ही जीवन, ने मानव को स्वार्थी बनाने में पर्याप्त सहयोग दिया है। इसके अतिरिक्त, पाश्चात्य भौतिकवादी विचारधारा का भारतीय जनमानस पर प्रभाव भी कुछ कम नहीं रहा है। यही प्रकृत रोग का निदान है।

समाज के अंग होने के नाते विद्यार्थी इस विचारधारा से अछूता न रह सका। संसद् और विधानसभाओं में यदा–कदा होने वाले अशोभनीय, अनुशासनहीन, उच्छृंखल क्रिया–कलाप भी अविकसित मस्तिष्क के छात्रों पर कुछ कुसंस्कार छोड़ जाते हैं। कला के नाम पर हिंसायुक्त कामोद्दीपक अश्लील चल–चित्रों के प्रदर्शन भी दुराचार का नग्न ताण्डव सिखला रहे हैं। ऐसे वातावरण में अपनी उचितानुचित दोनों प्रकार की माँगों को मनवाने के लिये विद्यार्थी अध्यापकों, प्राचार्यों, शिक्षाविदों के प्रति रोष प्रकट कर अशोभनीय व्यवहार

करने लगे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अभिभावकों की अपनी बच्चों के प्रति उदासीनता भी बहुत हद तक अमर्यादित व्यवहार के लिये उत्तरदायी है। इसके अतिरिक्त मात्र वेतन के लिये काम करने वाले अध्यापक भी शिक्षार्थियों में अशिष्ट आचरण बढ़ाने के लिये उत्तरदायी है। शिक्षक–शिक्षार्थी–सम्बन्धों में पचास प्रतिशत दशाओं में अब ऐसी स्थिति आ गयी है कि शिक्षक विद्यार्थी की भलाई के लिये उतना चिन्तित नहीं रहता, जितना उन्हें प्रसन्न और संतुष्ट रखने के लिये और टकराव बचाने के लिये। किंतु यदि 'सचिव बैद गुरु तीनि जौं प्रिय बोलहिं भय आस' की स्थिति हो तो इस भूमिका में विनाश का आह्वान स्पष्ट ही है।

अब आज की स्थिति में भी क्या सदाचरण–शिक्षण सम्भव है, यह प्रश्न है। इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि हाँ, यह कठिन होते हुए भी सम्भव है। विद्यार्थियों के हृदय एवं मस्तिष्क को कोई भी दिशा, विशेषकर स्वस्थ एवं रचनात्मक दिशा दी जा सकती है। मानव स्वभाव मूलतः लचीला है। हिटलर ने द्वितीय महायुद्ध के दौरान राष्ट्रवाद के नाम पर जो संगीत निकाला, उसकी लय पर समस्त जर्मनराष्ट्र नृत्य करने लगा। यद्यपि हिटलर का राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अस्वस्थ एवं अमांगलिक था, तथापि उससे यह बात भलीभाँति सिद्ध होती है कि लोगों के मस्तिष्क पर छाप डाली जा सकती है। विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के कुशल अध्यापकों, प्राचार्यों और प्रबन्धकों का यह अनुभव है कि सदाचार की शिक्षा मानव–सामर्थ्य की परिधि के अन्तर्गत है।

चरित्र–निर्माण एवं सदाचार–शिक्षण के लिये दो मुख्य बातें अपेक्षित हैं और यदि उनमें से एक को भी उपेक्षित किया गया तो कार्य या तो अपूर्ण रह जायेगा अथवा परिणाम आशानुकूल न निकलेंगे। प्रथम बात है सामाजिक व्यवहार का शिक्षण (Training in Social behaviour) और द्वितीय है अनुपम, उत्कृष्टतम, सुन्दरतम के प्रति अदम्य अनुराग (Quest for excellence, for the first rate)। सुन्दर, सौजन्यपूर्ण सामाजिक व्यवहार के प्रशिक्षण के प्रति सामान्यतः हम–सब उदासीन रहे हैं। व्यक्ति मूलतः स्वार्थी और स्वेच्छाचारी है। उसे शिष्ट सामाजिक व्यवहार का शिक्षण देना ही होगा, जिससे वह अपने परिवार का आदर्श सदस्य बन सके, समाज का अनुकरणीय सदस्य और समस्त विश्व का निदर्शन हो सके। यदि हम चाहते हैं कि वह व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर परिवार, समाज, देश तथा विश्व के लिये जिये–मरे, आचरण करे तो उसे मानव जाति का अच्छा सदस्य बनाकर जीवन जीने की कला में दक्ष करना ही होगा। इस दिशा में व्यक्ति को प्रत्येक चीज ही सीखनी है। इसका अर्थ यह हुआ कि उसे यह नये सिरे से सीखना होगा कि अन्यों की स्वस्थ भावनाओं, इच्छाओं और अधिकारों को पूर्ण आदर देते हुए वह अपने व्यक्तिगत स्वार्थों, विचारों और इच्छाओं को किस प्रकार अनुशासन में रखे। पर ये सामाजिक आदतें कैसे निर्मित की जायें, कैसे विकसित की जायें ? इनके शिक्षण का एक ही मार्ग है–एक ऐसे वातावरण का निर्माण, तथा रहने का अवसर प्रदान करना जहाँ स्वस्थ आदतें स्वतः विकसित होती हों। छात्रावासों की उचित व्यवस्था–ऐसी व्यवस्था जहाँ शिक्षार्थी अपने–आपको स्वयं अपने से बड़ी इकाई का सदस्य महसूस करते हुए उसके प्रति वफादारी और सेवाभाव सीख सके और नरसरी स्कूलों का सही शिक्षण। कैम्पों में दिया जाने वाला सामूहिक जीवन जीने का संदेश, स्काउटिंग की भावना अन्य युवक मूवमेंट में दी जाने वाली शिक्षा विद्यार्थी में सामाजिकता के संस्कारों को विकसित कर सकती है।

यह सब सामाजिक व्यवहार एवं सदाचार की शिक्षा अधूरी रह जायेगी यदि व्यक्ति को साथ–ही–साथ इस बात की दीक्षा न दी जाय कि उसका लक्ष्य क्या हो। सामाजिकता के

साथ–साथ उसमें उत्कृष्टम, सुन्दरतम के प्रति अदम्य अनुराग अनुप्राणित करना होगा। उसे यह स्पष्ट रूप से बताना होगा कि अपने गुरु का, सही गुरु का चयन करके उसमें पूर्ण निष्ठा से सेवारत हो जाय। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि यह 'गुरु' शब्द अध्यापक का पर्याय नहीं, बल्कि यह 'गुरु' शब्द व्यापक रूप में प्रयुक्त किया गया है। वह 'गुरुत्ता' समाज–सेवा भी हो सकती है, कला, साहित्य, विज्ञान अथवा अन्य कोई मानसिक क्रिया भी हो सकती है। पूछा जा सकता है कि व्यक्ति ने किसको अपना 'गुरु' बनाया है ?और उसकी सेवा के लिये वह कितना तत्पर है ?गुरु बनाने, अर्थात् लक्ष्य निर्धारित करने के पश्चात् जीवन की जिस भी परिस्थिति में वह हो उसमें विशिष्टता, अनुपमता ही उसका आदर्श हो। सुन्दर कार्य को अभीष्ट बनाना, उसके प्रति समर्पित होना, निरन्तर प्रयत्नशील रहना आदर्श सामाजिक जीवन जीने की कला है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में श्रेष्ठता, उत्तरोत्तर उत्तमता और विशिष्टता की खोज ही मानव का अभीष्ट होना चाहिये। यही यदि शिक्षण के क्षेत्र में अवतरित होता अथवा नेताओं के जीवन में फलीभूत होता तो कदाचित महान दार्शनिक एवं शिक्षाविद् डॉ० राधाकृष्णन् को यह न कहना पड़ता–

'विद्यार्थियों के अनाचार के पीछे हम नेताओं तथा अध्यापकों का आचार ही मूल कारण है।'

तथाकथित विद्यार्थी तथा शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्तियों द्वारा की गयी चोरी, डकैती, आगजनी, घूसखोरी तथा स्त्रियों के प्रति किये जाने वाले अभद्र व्यवहार शिक्षा की वर्तमान स्थिति का पर्दाफाश करती है। कहना न होगा कि एक अनपढ़, किंतु सच्चरित्र एवं सदाचारी व्यक्ति अधिक श्रेष्ठ है, अपेक्षाकृत ऐसे हजारों डिग्रीधारी व्यक्तियों के, जो चारित्रिक मेरुदण्डविहीन हैं।

विशिष्टता और श्रेष्ठता का शिक्षा में आगमन एवं अनुगमन कैसे हो ?यह एक विचारणीय प्रश्न है। इसके लिये व्यक्ति–मात्र को अपने–अपने कार्यक्षेत्र में विशिष्ट बनने के लिये सुन्दरतम तरीके मालूम होने चाहिये। उसे अपनी व्यावसायिक कुशलता एवं निपुणता पर गर्व होना चाहिये। उसे राष्ट्रीय जीवन के उदात्त तथा अनुपम तत्वों का भी समुचित ज्ञान होना आवश्यक है। उसकी महत्वाकांक्षा उत्कृष्ट हो, साथ ही उसे यह भी जानकारी हो कि मानव–चरित्र और आचरण में सर्वोत्तम का सिद्धान्त है–

'परहित सरिस धरम नहि भाई।
पर पीड़ा सम नहि अधमाई।।'

धार्मिक एवं आध्यात्मिक साहित्य का अनुशीलन व्यक्ति को सदाचारी बनाने में सहायक हो सकता है। धर्म निरपेक्ष का अर्थ यह नहीं कि भारत की धार्मिक एवं सांस्कृतिक सम्पदा–'वेद', 'उपनिषद', 'पुराण', 'रामायण', 'महाभारत', 'मनुस्मृति', 'रामचरितमानस' से मुँह मोड़ लिया जाय। वस्तुतः इन धार्मिक, नीतिपूर्ण, शिक्षाप्रद ग्रन्थों के श्रेष्ठ अंशों का समावेश पाठ्यक्रमों में किया जाना समय की आवश्यकता है। इन अमूल्य ग्रन्थों की शिक्षाप्रद गाथाएँ मानव की, विशेषकर तरुण विद्यार्थियों की उगती हुई पीढ़ी को अनुप्राणित कर सदाचारी बनाने में सहायक हो सकती है। पाठ्यक्रमों में भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले इन धार्मिक–सामाजिक ग्रन्थों के अंशों का समावेश एक ओर भारतीयों के पश्चिम के अंधानुकरण को रोकेगा तो दूसरी ओर विद्यार्थी एवं शिक्षक–वर्ग में भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति स्वाभिमान जाग्रत करेगा। ऐसे साहित्य का अध्ययन, मनन एवं अनुशीलन निःसंदेह आधुनिक शिक्षा को सच्चरित्रता प्रदान करेगा। यही उत्तम उपाय है।

***

धर्म और अधर्म

- स्वामी श्रीसनातन देव जी -

श्रीभगवान युगपद् विरुद्धधर्म-गुणों के आश्रय हैं। वे परस्पर विरोधी धर्मों के आश्रय हैं और उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है। यदि उनसे भिन्न कुछ भी मनाया जाय तो उनकी पूर्णता बाधित हो जायेगी। जिस प्रकार प्रकाश और अन्धकार दोनों आकाश में ही रहते हैं, किन्तु आकाश इन दोनों से विलक्षण है, इसी प्रकार विभिन्न विरुद्ध धर्मों के अधिष्ठान यद्यपि भगवान ही हैं, तथापि वे उन सभी से असंस्पृष्ट हैं। धर्म और अधर्म की उत्पत्ति भी शास्त्रों ने श्री भगवान से ही बतायी गयी है। परन्तु धर्म भगवान् के वक्षःस्थल से प्रकट हुआ है और अधर्म उनके पृष्ठ–भाग से, अर्थात् धर्म भगवान के सामने रहता है और अधर्म उनके पीछे।

वे सर्वान्तर्यामी प्रभु जी मनुष्य में विवेकरूप से विराजते हैं। वे सर्वदा उसे यह बताते रहते हैं कि क्या करने योग्य है और क्या करने योग्य नहीं है। जो मनुष्य विवेक–भगवान् का आदर करता है, वह धर्मात्मा है और वह एक दिन निश्चय ही अपने परम लक्ष्य–श्रीभगवान् को प्राप्त कर लेता है। परन्तु जिसने इस हाड़–मांस के पंजर में आत्मबुद्धि करके उसकी अहंता और ममता के अधीन होकर अपने दृष्टिकोण को संकुचित कर लिया है, वह सर्वदा स्वार्थ को सामने रखकर ही कोई काम करने या न करने का निर्णय करता है। यह स्वार्थमयी संकुचित दृष्टि उसे अपने यथार्थ कर्तव्य से च्युत कर देती है और वह भोगासक्त होकर न करने योग्य अनेक कार्य करने लगता है। यद्यपि विवेक–भगवान उसे भी उसके यथार्थ कर्तव्याकर्तव्य का बोध कराने से नहीं चूकते, तथापि स्वार्थान्ध होने के कारण वह उनके इंगित की उपेक्षा कर देता है। फलतः ऐसी स्थिति आ जाती है कि फिर उसे उस ओर देखने की दृष्टि ही नहीं रह जाती। एक डाकू भी जानता है कि डाका डालना अच्छी बात नहीं है, परंतु लोभ उसे उस न करने योग्य कार्य में बलात् प्रेरित कर देता है। इसी प्रकार और भी जितने न करने योग्य कार्य हैं, वे स्वार्थवश विवेक की उपेक्षा करके ही किये जाते हैं। इसी से शास्त्रों का यह निर्णय है कि अधर्म भगवान के पृष्ठभाग से उत्पन्न हुआ है अर्थात् उनकी विवेक रूप दृष्टि की उपेक्षा करके आचरित होता है और धर्म उनके वक्षःस्थल से अर्थात् उनकी दी हुई विवेक–दृष्टि का आदर करके आचरित होता है।

आज संसार में अधिकतर लोग भोग को ही परम पुरुषार्थ समझते हैं और उसकी प्राप्ति के लिये स्वार्थ सिद्धि के ही पीछे पड़े हुए हैं। इस दृष्टि का उन पर इतना प्रभाव है कि उनकी समझ के अनुसार निर्दोष जीवन–यापन करना प्रायः असम्भव है। वे दोष को स्वाभाविक और निर्दोषता को कष्ट–साध्य मानने लगे हैं। जो लोग धर्म और समाज सेवा की दुहाई देते हैं उनकी कथनी और करनी में भी प्रायः विरोध रहता है। इससे सर्वसाधारण को अपने असदाचरण के लिये और भी प्रश्रय मिल जाता है। परन्तु विचार–दृष्टि से देखा जाय तो निर्दोषता या धर्म ही स्वाभाविक है, दोष या अधर्म तो सर्वथा अस्वाभाविक और प्रमादवश अपना ही किया हुआ अपराध है। यदि दोषी अपने विवेक का आदर करे तो बड़ी सुगमता से वह भी निर्दोष होकर अपने परम प्राप्तव्य लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। विवेक का आदर न करना दुर्भाग्य है।

निर्दोषता स्वाभाविक है, यह बतलाने के लिये यहाँ कुछ विचार प्रस्तुत किये जाते हैं। विचार कीजिये।

१– निर्दोषता सहज–सिद्ध है और दोष क्रिया–साध्य है। अहिंसा, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि के लिये आपको कोई क्रिया नहीं करनी पड़ती। किंतु हिंसा, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह आदि सभी दोष श्रम–साध्य हैं। इन्हें करने की अपेक्षा न करना सर्वदा ही सुगम है, इसलिए निर्दोषता दोष की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक है।

२– निर्दोषता में स्वतन्त्रता है और दोष में परतन्त्रता। अहिंसा का निर्वाह करने के लिये किसी अन्य जीवन की अपेक्षा नहीं होती, किंतु हिंसा तभी हो सकती है जब कोई हिंस्य जीवन हो। अस्तेय के लिये किसी द्रव्य की आवश्यकता नहीं होती, किंतु चोरी तभी हो सकती है जब कोई द्रव्य सामने हो। ब्रह्मचर्य–पालन के लिये किसी अन्य पुरुष या स्त्री की आवश्यकता नहीं है, पर व्यभिचार किसी अन्य पुरुष या स्त्री के रहने पर ही सम्भव है। अपरिग्रह के लिये किसी सामग्री की अपेक्षा नहीं है, किंतु परिग्रह बिना कोई सामग्री हुए हो ही नहीं सकता।

३– निर्दोषता सनातन है और दोष आगन्तुक। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह इत्यादि धर्मों का पालन सर्वदा किया जा सकता है, परंतु असत्य, हिंसा, व्यभिचार, चोरी और परिग्रह सर्वदा नहीं किये जा सकते। इसी प्रकार अन्य निर्दोषता और दोषों के विषय में भी समझना चाहिये।

४– निर्दोषता व्यापक है और दोष संकुचित। आप सत्य, अहिंसा और ब्रह्मचर्यादि धर्मों का सबके प्रति आचरण कर सकते हैं, परंतु असत्य, हिंसा और व्यभिचार आदि दोषों का आचरण सबके साथ नहीं हो सकता। अतः दोष की अपेक्षा निर्दोषता अधिक व्यापक और स्वाभाविक है।

५– निर्दोषता सर्वप्रिय है और दोष किसी को भी प्रिय नहीं है। कोई भी व्यक्ति अपने प्रति किसी प्रकार का दोषपूर्ण आचरण किया जाना पसंद नहीं करता, सभी निर्दोष व्यवहार की अपेक्षा रखते हैं। अतः किसी को भी दूसरों के प्रति सदोष आचरण नहीं करना चाहिये।

इन सब विचारों को सामने रखते हुए यह निश्चय होता है कि निर्दोषता ही स्वाभाविक है, दोष नहीं। जो स्वार्थान्ध हैं उन्हीं को निर्दोषता में कठिनता का दर्शन होता है। मनुष्य में सुख की दासता और दुःख का भय इतना बद्धमूल हो गया है कि उनके वशीभूत होकर उसे निर्दोष जीवन दुर्लभ–सा जान पड़ता है। किंतु सुख की उपलब्धि और दुःख से बचने के लिये अकर्तव्य का आश्रय लेने पर क्या वह इनके पंजे से बच जाता है ? सृष्टि में आज तक तो ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं हुआ, जिसके जीवन में दुःख न आया हो और आया हुआ सुख चला न गया हो। जिस प्रकार काल के अंगभूत दिन और रात्रि के क्रमिक आवागमन होते रहते हैं, उसी प्रकार जीव के जीवन में सुख–दुःख दोनों ही आते–जाते रहते हैं। आज–कल दुकानदारी (व्यापार) में अधिकतर लोग धनोपार्जन के लिये झूठ और कपट का आश्रय लेते हैं, फिर भी वे सभी धनाढ्य नहीं हो जाते। अतः चाहे आप कितना ही दोष का आश्रय लें, आप

न तो सुख को सुरक्षित रख सकते हैं और न दुःख से ही बच सकते हैं। अतः सुखासक्ति या दुःख के भय से दोष का आश्रय लेना घोर कायरता है। साधक को इनकी ओर न देखकर सर्वदा अपने कर्तव्य का ही पालन करना चाहिये। ये सुख–दुःख तो आते–जाते ही रहेंगे, इनसे कोई बच नहीं सकता। जो पुरुष इनकी उपेक्षा करके अपने कर्तव्य का पालन करता है, वही इस लोक में भी सम्मानित होता है और वही अपने जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है। वास्तव में सुख और दुःख दोनों ही साधनरूप हैं। जो सुख प्राप्त होने पर उसे दूसरों की सेवा में लगाता है तथा दुःख से भयभीत न होकर अपनी निष्ठा में निश्चल रहता है वही सच्चा साधक है। वही सर्व–साधारण के लिये आदर्श होता है और वही उत्तरोत्तर विकास करते हुए अपना चरम लक्ष्य प्राप्त करता है। संसार में वे ही लोग तो आदर्श माने गये हैं, जिन्होंने ने कठिन–से–कठिन परिस्थिति में भी अपने धर्म का निर्वाह किया है। जीवन एक यात्रा है। यात्रा चलने से ही पूरी होती है। हाँ, थक जाने पर शक्ति–संचय–के लिये बीच–बीच में थोड़ा विश्राम भी करना पड़ता है। जीवन में दुःख चलने के समान है और सुख विश्राम–रूप है। यात्रा चलने से ही पूरी होती है, विश्राम से नहीं। इसलिये बीच–बीच में विश्राम लेते हुए जो निरन्तर निर्भय होकर अग्रसर होते रहते हैं वे ही एक दिन संसार–बन्धन से छूटकर अपने जीवन का परम लक्ष्य प्राप्त करते हैं और उनका जीवन सर्वसाधारण का पथ–प्रदीप बनता है। अतः सुख–दुःख को पथ के अनिवार्य स्थल समझकर उनमें बिना उलझे विवेक को साथ लेकर कर्तव्य–पथ पर बढ़ते जाना ही साधक का वास्तविक कर्तव्य है।

***

पीकर गुरु के ज्ञान का प्याला..

– राजेश कुमार सिंह, रोहुआ –

पीकर गुरु के ज्ञान का प्याला पागल हूँ परवाना मैं,
मस्तों के साथ झूम–झूम कर मस्ती लूँ मस्ताना मैं।

ना मन्दिर, ना मस्जिद मैं, ना काबा, ना काशी है,
चेतन नयनों से देख ले प्राणी, कण–कण का वो वासी है,
गोरे–काले का रंग नहीं, ना आती हूँ अनजाना मैं,
मस्तों के साथ...

शाही मेरे मालिक सद्गुरु, मैं हूँ एक शहजादा,
होश नहीं है मुझको कोई, पी लिया कुछ ज्यादा,
साकी सबको देता है, ना अपना तू बेगाना मैं,
मस्तों के साथ....

गुरुवर केवल एक रटन है, दिल के बस्ती गलियों में,
साधना पथ से मुक्ति पाऊँ, ना भटकूँ रंगरलियों में,
राजेश दौलत दूना कर लूँ, जब–जब बनूँ दीवाना मैं,
मस्तों के साथ.....

कल्याण का मूल स्रोत : सद्‌गुरु सेवा

– वेदव्रत द्विवेदी, उमापुर –

उत्तिष्ठत् जाग्रत् प्राप्य वरान्निबोधत्।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।

अर्थात् उठो, जागो और महान पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्व ज्ञानी लोग उस पथ को भी वैसा ही दुर्गम बताते है। सन्मार्ग कितना ही दुर्गम क्यों न हो परन्तु फिर भी सद्‌गुरु की सेवा करने वाले जिज्ञासुओं के लिए उनकी कृपा से अति सुगम हो जाता है।

(1) **संतन से ही पाइये, राम मिलन को घाट। सहजे से खुल जात है, सुन्दर हृदय कपाट।।**

(2) **दादू इस संसार में, ये दो रतन अमोल। एक साई एक संत जन, इनका मोल न तोल।।**

यदि आप परम शान्ति अथवा कल्याण की आशा से संत सद्‌गुरु के अतिरिक्त इस जगत में किसी पदाधिकारी राजा महाराजा या किसी अन्य संसारी पुरुष की शरण लेते हैं, और उन्हें प्रसन्न कर पाते हैं तो वह तुम्हें संसारी वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं दे सकते। और यह निश्चित सत्य है कि संसार की किसी वस्तु से परम शान्ति नहीं मिल सकती। आप स्वयं विचार कर सकते हैं कि संसार में एक से बढ़कर एक सांसारिक सम्पत्ति के धनी हो चुके हैं, लेकिन कोई भी उस सम्पत्ति से शान्ति प्राप्त नहीं कर सका। यदि आप और आगे बढ़कर प्रकृति की अलौकिक शक्तियों एवं देवी–देवताओं की शरण में जाते हैं और उनकी सेवा–पूजा, आराधना, वन्दना इत्यादि करते हैं और शायद वे प्रसन्न हो जायें तो वे भी कुछ अलौकिक चमत्कार जनक विद्या या विशेष प्रकार के ऐश्वर्य भोग की सामग्री के अतिरिक्त आप को वह नहीं दे सकते, जिससे आप परम शान्ति एवं शाश्वत् आनन्द का लाभ ले सकें। वास्तव में जिस साधन के द्वारा जिस बल के द्वारा परम शान्ति एवं परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है, उसके पूर्ण ज्ञाता एक मात्र सद्‌गुरु देव भगवान ही है।

अतः विचार करने पर यही मालूम पड़ता है कि सद्‌गुरु भगवान मीठी शक्कर की तरह हैं। जो शिष्य साधना के पथ पर चल रहा है, अपने गुरुदेव भगवान की वाणी पर पूर्ण श्रद्धा एवं विश्वास के साथ बताये हुए नियमों पर चल रहा है, और साधना में लीन है, अपना आपा सद्‌गुरुदेव भगवान के श्री चरणों में सौंप दिया है तथा समर्पित एवं समर्पण दोनों का क्रियात्मक विधि से पालन कर रहा है, तो समझो सद्‌गुरु भगवान अपने ही समान अपने प्यारे बच्चों को भी बना देते है। इसमें रंच मात्र भी शंका करने की आवश्यकता नहीं है।

अतः आप सभी लोग किसी अन्य की शरण में न जाकर श्री सद्‌गुरु की ही शरण लीजिये और उन 'विभु' जगत नियन्ता योगयोगेश्वर भगवान को प्रसन्न कीजिये। श्री सद्‌गुरु कृपा से जो परम धन प्राप्त होता है, लोक और परलोक में और किसी से नहीं मिल सकता। आनन्दकन्द गुरुदेव भगवान प्रायः कई बार अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि कल्याण का मूल स्रोत सद्‌गुरु देव भगवान की सेवा और उन दया निधान की प्रसन्नता है। यदि आप परम शान्ति चाहते हैं तो सद्‌गुरु की शरण में

जाकर उनसे संसार के पदार्थों की याचना न कीजिये। बल्कि उनकी आज्ञा का पालन करते हुए उनके पास जो दिव्य सम्पत्ति है, उसी को प्राप्त कर सत्यानन्द के भागी हो जाइये। तब आप सभी उस सद्गुरु रूपी सम्पत्ति के अधिकारी हो सकेंगे, जब अपने को स्वतन्त्रता पूर्वक उनकी शरण में स्थिर रखने की योग्यता प्राप्त कर लेंगे।

इसलिए किसी संत ने कहा है कि भगवान को पाने के लिए और कुछ भी उपाय न करके पहले भगवान के भक्तों की शरण लीजिये क्योंकि भगवान के प्रेमी लोग या भक्त भगवान से अवश्य ही मिला देंगे।

हरि से तू जनि हेत करि, हरि जन सो कर हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरि ही देख।।

वह परमानन्द स्वरूप ईश्वर, ज्ञानियों के लिए सद्गुरु ही होता है, पहले अपने शिष्यों का काम, क्रोध, मद, लोभ, मत्सर, पाँचों विकारों को जड़ से समाप्त कर देता है। तब कहीं जाकर शिष्य, साधना का संबल लेकर खोज में प्रवेश करता है। वैसे वह किसी की करुणा पूर्ण पुकार सुनकर दौड़े चले आते है। लेकिन एकनिष्ठ सद्गुरु भक्ति के दीवानों के साथ उनके सद्गुरु देव भगवान अंग–संग रहा करते है तथा पतितों को पावन बनाते हैं और जो कोई शरणागत हो उसका सब तरह से कल्याण ही करते है। इसी से वे दीनबन्धु अधमोद्धारक कहलाते है।

गुरुदेव भगवान की सेवा करने का सौभाग्य बिरले ही पुरुषों को प्राप्त होता है। पूर्व जन्म का जिनका सौभाग्य अच्छा है ऐसों को ही सद्गुरु देव भगवान के चरणों की प्राप्ति होती है। मनुष्य की चिन्मता स्वरूप अन्तरात्मा में अनेकों प्रकार की उच्चतर सुन्दर शक्तियाँ गुप्त रूप में छिपी पड़ी है, उनकी जागृति अथवा उनका क्रम पूर्वक विकास सद्गुरुदेव प्रदत्त युक्तियों के द्वारा ही होता है। इसका अनुभव करते हुए गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस बरबस ही सजीव हो उठता है–

गुरु बिन भवनिधि तरे न कोई।
जो बिरंचि शंकर सम होई ।।

श्री गुरुदेव भगवान की महिमा का अगाध समुद्र तो सभी भावुक भक्त देखते ही रहते है, तो मैं मूढ़ अज्ञानी क्रियाहीन प्रभु के शिष्य होने के नाते दो–चार बूँद शायद प्राप्त ही कर लूँ तो, उन करुणामय प्रभु की महान कृपा होगी।

कबिरा यह तन जायगा, कवने मारग लाय।
कै संगत करि साधु की, कै हरि के गुण गाय।।

संत सद्गुरु की भक्ति उदय होने पर भोगों से विरक्ति होना सुगम है, क्योंकि गुरुदेव के प्रति प्रेम भाव तभी जाग्रत होता है जब सदाचरण की ही जीवन में प्रधानता होती है और इसी से सद्गुणों की वृद्धि होती है। सदाचार का पालन करना गुरुदेव की मुख्य आज्ञा है। इसी से अन्तःकरण निर्मल होता है, तभी सुख स्वार्थ के प्रति राग का त्याग होता है। श्री गुरुदेव की समीपता में पहुँचकर यदि शिष्य में असत् संगतियों की तरह सांसारिक सुख दुःख , लोभ, मोह, क्रोध आदि मनोविकार बने रहे तो सत्संग का फल ही क्या मिला? अतः सद्गुरु समागम का पहला फल तो यही है कि मोह का त्याग हो, क्योंकि मोह का त्याग हुए बिना इस पवित्र मार्ग पर चला ही नही जा सकता। इसलिए तो गोस्वामी बाबा जी कह रहे है कि –

'मोह सकल व्याधिन्हि के मूला।'

सारे व्याधियो की जड़ मोह ही है और यही अज्ञानता है। इसी अज्ञानता के कारण क्रोध की उत्पत्ति होती है। भोग सुखो की कामना से विषयो में राग दृढ़ होता है। और राग के कारण द्वेष चरितार्थ होता है। और जहाँ द्वेष है वहीं क्रोध है, वहीं अहंकार भी होता है।

कोटि किरण लागे रहे, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया अहंकार।।

अन्त में सद्गुरुदेव भगवान के चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम करते हुए अन्तर्यामी गुरुदेव भगवान से यही प्रार्थना करते हैं कि अपनी कृपा से हमें सद्बुद्धि का प्रकाश प्रदान करें।

गुरुदेव तेरी लीला हर मन को भायी !

डॉ. कृष्णवीर सिंह तोमर
चरेरा (आगरा)

गुरुदेव तेरी लीला, हर मन को भायी है।
यही संदेश देने, विजय दशमी आयी है।।
ग्राम अनूपुर जन्म लियो प्रभु, धन्य भये पितु–माता।
निज भक्तन तारण कारण, आये जगती के त्राता।।
नर–नारी मिल मंगल गावें, पितु–मात को देत बधाई है।
यही संदेश देने, विजय दशमी आयी है।।1।।
देख रूप निज बालक को, चन्द्रमोहन नाम धरी है।
गुरुजी ने निज भक्ति से, साकू साकार करी है।।
चन्द्र से सुन्दर 'चन्द्रमोहन', लखि ज्योत्सना शर्मायी है।
यही संदेश देने, विजय दशमी आयी है।।2।।
बालकपन में ही श्री गुरुजी, विद्यालय को जाते।
याद करें जब निज स्वरूप को, श्रीकृष्णचन्द्र को ध्याते।।
आचार्य तक शिक्षा पाकर भी, योग विद्या ही भायी है।
यही संदेश देने, विजय दशमी आयी है।।3।।
पाय किशोरावस्था लगन, योग सीखन की लागी।
मात पिता परिजन छोड़े, सुख सम्पत्ति त्यागी।।
अखिल विश्वनायक महाप्रभु, श्री राम से दीक्षा पायी है।
यही संदेश देने, विजय दशमी आयी है।।4।।
पायी युवावस्था, हिमालय जाने की ठानी।
योगेश्वर महाप्रभु ने बात निज बालक की जानी।।
आज्ञा दी योग प्रचार की, बात समझ में आयी है।
यही संदेश देने, विजय दशमी आयी है।।5।।
धोती कुर्ता धारण करते, नहीं आडंबर कीना।
भाग्यवान शिष्यों ने, अपने सद्गुरुजी को चीन्हा।।
हो प्रसन्न निज बच्चों पर, प्रभु योग सुधा बर्षायी है।
यही संदेश देने, विजय दशमी आयी है।।6।।

विश्वास की शक्ति और स्वीकारात्मक विचार

दृष्टिकेतु पुण्डीर, अलीगढ़

विचार, शब्द और कार्य मे सम्भवत: विचार सबसे प्रबल है, क्योंकि यह अन्य दो का अग्रदूत है। लड़ाई पहले मन में लड़ी जाती है। सफलता दो बार जीती जाती है। एक बार मन में फिर वास्तविक संसार में। अपने ध्येयों की कल्पना करना और सफलता किसी भी सफल नेता का कौशल होता है।

कोई बात नहीं जिसके मन मे विचार आता है, इसकी लेजर जैसी ऊर्जा एक लक्ष्य खोजती है। विचार एक प्रबल ताकत के रूप मे प्राचीन युगो से अच्छी तरह से पहचाना जाता है। यही कारण है कि हम नवीन अनुसंधानों का महत्व देते है। किसी योजना पर कार्य करने से पहले दैवीय आशीर्वाद खोजते है। इसलिए हम जवानों को बुजुर्गो का आशीर्वाद लेने का सदुपदेश देते है। हम जानते है कि स्वीकारात्मक सोच एक प्रबल ताकत है, जिसे सबके कल्याण और सफलता के लिए एकीकृत किया जा सकता है। सभी धार्मिक नेताओं द्वारा प्रार्थना के महत्व पर जोर दिया जाता है। प्रार्थना क्या है? यह एक विचार ही तो है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने कहा – "यदि आप अपने अन्तरस्थ हृदय के तल से कोई चीज़ चाहते है तो निश्चिन्तता मे विश्राम कीजिये, मेरी माँ (कालीदेवी) आपकी प्रार्थनाओं का उत्तर देगी, यदि आप इन्तजार करेंगे। प्रार्थनाये ब्रह्माण्ड मे प्रबल कम्पनों को भेजती है और हमारी प्रार्थनाओं की वस्तुओं को प्राप्तकरने मे एक चुम्बकीय क्षेत्र का निर्माण करती है। अनगिनत उदाहरण भरे पड़े है जबकि सामूहिक प्रार्थना ने आश्चर्यजनक कार्य किया है। अभी हाल ही मे डिसकवरी चैनल पर एक लड़की के विषय में बताया गया, जो एक महिने से ज्यादा मूर्छा (कोमा) मे रही। वह मृत्यु के कगार पर थी। सम्बन्धियो और चिकित्सको ने आश्चर्य किया कि उसकी जीवन प्रणाली स्रोत अलग हो जायेगा। उन्होने आशा न त्यागने का निर्णय लिया। उसकी भलाई के लिए उसके स्कूल में सामूहिक प्रार्थनाये हुई, जब लड़की पुन: ठीक हो गयी तो यह आश्चर्य कम नहीं था।

प्रार्थनायें अन्दर से ऊर्जा निकालती है, उन चीजों को प्राप्त करने के लिए जो हम चाहते है। हम स्वीकारात्मक विचार को तनाव भंजक के रूप मे जानते है। क्योंकि अच्छा स्वास्थ्य, प्रसन्न विचार हार्मोनों को निकालते है, जो हमारी कुशलता के लिए कार्य करते है और नकारात्मक विचार ऐसे हार्मोनो को नि:सृत करते है जो हमे बीमार बना देते है। हम अपने बच्चों को बड़ा सोचने और बड़ा स्वप्न देखने का सदुपदेश देते है। हम उन्हे बतलाते हैं कि वे अपना ध्येय अपने मन में रखें। पक्का इरादा उसी विचार को बार-बार सोचना है। विचारों का प्रभाव उन्हीं पर ही नहीं होता जो सोच रहे है बल्कि उन पर भी होता है जिनको ओर विचार सम्प्रेषित किये जाते है। 'रेकी' द्वारा चिकित्सा इसका अच्छा उदाहरण है।

प्रेम और दया के विचारों को भेजकर हिंसकों को भी शान्त किया जा सकता है। बुद्ध ने नलगिरि पागल हाथी को और अंगुलीमाल लुटेरे को प्रिय दयालुता के विचारो से शांत किया। हम अक्सर कहते है कि व्यक्ति अपनी संगति से जाना जाता है, जिसमे वह रहता है। एक संवेदनशील मस्तिष्क सभी विचारों के प्रकम्पनो को गृहण करता है, जो व्यक्तियों से निकलते है। धार्मिक स्थलों को जाकर देखना अच्छा समझा जाता है क्योंकि वहाँ जमा हुए धार्मिक व्यक्तियो के विकीर्णित विचार निश्चयात्मक रूप से व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। पेड़, पौधे और जानवर सभी विचारों का प्रत्युत्तर देते हैं।

संसार ईश्वर का एक विचार है और हम वही है जो हम सोचते है। हमारे विचार असीमित है। वे पूर्णरूप से स्वतन्त्र है और हमे प्रभावित करने को स्वतन्त्र है–बेहतरी के लिए या बदतरी के लिए। हमें यह तथ्य स्वीकार करने दो और कल्याण व बेहतरी के लिए स्वीकारात्मक विचारों को एकीकृत करने दो।

●●●

श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र
श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर)

का
यौगिक सत्साहित्य

पुस्तक का नाम	मूल्य	पुस्तक का नाम	मूल्य
1. योग सिद्धान्त, भाग-1	रु. 100.00	22. योगेश्वर चरित्रमाला	रु. 5.00
2. योग सिद्धान्त, भाग-2	रु. 100.00	23. सर्वसमर्थ गुरुदेव	रु. 7.00
3. मेरी निजानुभूतियाँ	रु. 10.00	24. अद्भुत महायोगी	रु. 10.00
4. भोग-रोग-योग	रु. 10.00	25. सद्गुरु संकीर्तन भजनमाला	रु. 5.00
5. जीवन तत्व (बड़ा)	रु. 15.00	26. योग अमृत भजनावली	रु. 5.00
6. जीवन तत्व (छोटा)	रु. 5.00	27. दीदी के भजन	रु. 5.00
7. ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी	रु. 10.00	28. मेरा सवाँई आगमन	रु. 7.00
8. योगिराज मुल्खराज जी	रु. 10.00	29. सवाँई के चमत्कार	रु. 10.00
9. प्रभुजी की स्वहस्तलिखित कथायें	रु. 20.00	30. अध्यात्म भजनावली-1	रु. 5.00
		31. अध्यात्म भजनावली-2	रु. 5.00
10. मन की एकाग्रता के साधन	रु. 7.00	32. अध्यात्म भजनावली-3	रु. 5.00
11. आठ योगी	रु. 10.00	33. अध्यात्म भजनावली-4	रु. 5.00
12. योग क्यों - कैसे	रु. 7.00	34. अध्यात्म भजनावली-5	रु. 5.00
13. गुरु गीता	रु. 10.00	35. Life Force	रु. 10.00
14. योगी की अतुलित शक्ति	रु. 7.00	36. योगासन चित्रपट	रु. 10.00
15. सुधा संगीत	रु. 5.00	37. योगासन चित्रपट (छोटा)	रु. 5.00
16. योग क्या ?	रु. 5.00	38. महायोगी की लोकयात्रा	रु. 100.00
17. यम-नियम	रु. 7.00	39. गुरुदेव वचनामृत (तीन खण्डों में)	रु. 100.00
18. यौगिक षट्कर्म	रु. 5.00		
19. सचित्र योगासन	रु. 20.00	40. सद्गुरु कृपालीला, भाग-1	रु. 35.00
20. समाधिस्था योगनियाँ	रु. 10.00	41. सद्गुरु कृपालीला, भाग-2	रु. 40.00
21. योग रामायण	रु. 20.00	42. चरणोदक	रु. 10.00

उपरोक्त पुस्तकें आश्रम पर स्वयं आकर अथवा डाक द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं।
डाक एवं पैकिंग खर्च पाठकों को स्वयं वहन करना होगा। - व्यवस्थापक

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/06-08

December 2006

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री ________________

____

____

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

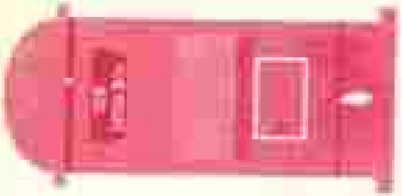

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर मोहर आकार (स्थान आधार) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप)
3. पैनल बाहरी पर स्थान का प्रायोजन (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेन्टिंग चार्ज रु. 300.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

संस्थापक-योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डा. रासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर. एन. आई. रजि. नं. UPHIN/2004/14568. सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) रासलाल शर्मा

PRINTPOINT-0562-2262361